समर्पण।

संसारमें सुखही सुख भरा हुआ होने पर भी स्वार्थमय विचार और 'अश्रद्धा' रूपी राहु उसके प्रकाशको रोक कर अपनी दुःखमयी अन्धेरी छाया मनुष्यके हृदय पर डालता है, जिन महात्माओंने उस राहुका मस्तक काट सम्पूर्ण विश्वमें सुखका उजेला ही उजेला प्रकट कर दिया,-उन्हींकी कृपाका यह छोटासा फल, उन्हींकी महान् आत्माको समर्पित है।

उपोद्घात।
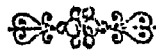
प्रिय पाठक! जो ज्ञान अनादि समयसे अलग २ जीभ और कलमों द्वारा अलग २ रूपमें प्रगट होता आया है और अनन्त समय तक प्रकट होता रहेगा, उस ज्ञानका एक किरण मुझे जिस किसी महानुभावके मुखसे-जिस किसी के साधनसे जिस किसी स्फुरणसे जिस रूपसें प्राप्त हुआ है उसे वैसेही रूपमें आपके साम्हने रक्खा है। इसकी नवीनताके बारेमें मैं कुछ हक कायम नहीं करता और न यह जिद् करता हूं कि यह उत्तम रूपसे प्रकट किया गया है। तुम्हें ही जो यह अनुकूल जान पड़े तो अपने हृदयमें रख लेना, नहीं तो खुशीसे इस किरणके आड़ हृदयके

किवाड़ बन्द कर लेना पसन्द करना न करना तुम्हारे ही सिर रखता हूं। परन्तु जो तुम्हें इस किरणसे कुछ भी तसल्ली मिले, कुछ भी तुम्हारे हृदयमें तेज पैदा करे, इसके स्पर्शसे तिलमात्र भी तुम्हारी चिन्ता मिट और तुम्हारे अप्रिय संयोग अदृश्य हो जाय–दूर हट जाय तो, ओ प्रिय पाठक! तो इस पर अमल कर दूसरे किरणकी याने दूसरे भागकी प्राप्ति होनेकी इच्छा करना।

यह प्रथम भाग, प्रथम गुजराती भाषामें बनाया गया था, जिसकी आज तक तीन आवृत्तिकी ५००० प्रतिका विना मूल्य प्रचार किया गया फिर कई महाशयों की सलाहसे इसका हिंदी भाषांतर प्रसिद्ध करनेका विचार हुआ. मेरे परममित्र श्रीयुत 'भारतवासी' जो इतना आत्मार्थी है कि अपना नाम तक जाहिर करनेकी मुझे मना करता है, उसने यह अनुवाद हिन्दीमें कर भेजा जिससे मैं अब उसका आभार मानता हूं वा० मो० शाह,
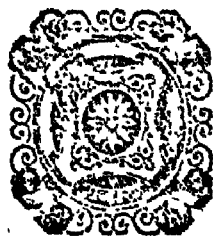
* वन्दे जिनवरम्

संसारमें सुख कहां है ?

प्रकरण १

दुःख ।

आधि व्याधि और उपाधि—या एकही शब्दमें कहें तो दुःख यह जिन्दगीकी छायाहैं । जहां जिन्दगी है, वहां ये भी हैं ही ऐसा एक भी हृदय नहीं है जिसमें दुःखका दंश न लगा हो, ऐसा एक भी मस्तिक नहीं है जिसने चिन्ता के कालेपानीमें गोते न खाये हों । ऐसी एक भी आंख नहीं है जिसने गरम गरम आंसू न बहाया हो, और न एक भी ऐसा घर ही है जिसमें आधि व्याधि उपाधि रूपी शस्त्रोंको लेकर मृत्यु देवने प्रवेश न किया हो । प्रत्येक प्राणी थोड़ा या बहुत दुःखकी बेड़ियों से अवश्य जकड़ा हुआ है । मनुष्य मात्रके मस्तक पर संकट घूम रहे हैं ।

इन घूमते हुए संकटोंसे सर्वथा बचनेके लिये या उनका प्रभाव कम करनेके लिये स्त्री और पुरुष नाना भांतिकी युक्तियां लड़ाते हैं और अन्धे मनुष्यों की भांति उन युक्तियोंके पीछे हो लेते हैं। वे सोचते हैं कि ये मार्ग उन्हें अक्षय सुखतक पहुंचा देंगे। शराबी या रण्डीबाज जैसे शारीरिक मौजमें ही रमा करते हैं वे तक उस कृत्यको सुखके खयालसे ही करते हैं। द्रव्य या कीर्त्तिके लिये मर मिटने वाला मनुष्य भी सुखके लिये ही द्रव्य या कीर्त्तिको संसारके प्रत्येक पदार्थसे मूल्यवान् गिनता है। और धार्मिक अनुष्ठान में चित्तको लगाने वाले मनुष्य भी सुखके लिये ही धार्मिक अनुष्ठान करते हैं।

इन सब मनुष्यों को, जिस सुखको यह ढूंढते थे वह सुख कुछ आता हुआ भी जान पड़ता है, जैसे शराबकी बेहोशीमें सब दुःख भूल कर शराबी आदमी अपने आपको बादशाही सुखमें आया हुआ मानता है वैसे ही थोड़ी देरके लिये इनका आत्मा भी अपने आपको आनन्द भोगता हुआ मानता है। परन्तु अफसोस! आखिरमें व्याधि आ पहुंचती है और चिन्ता, लोभ, संकट आदि रूपसे उस अदृढ़ आत्मा पर एकाएक टूट पड़ती है, जिससे उसका माना हुआ सुखका 'चोर' फट-फटाकर 'चिंथड़ा' हो जाता है।

इस तरह शारीरिक आनन्द पर दुःखकी बड़ी भारी तलवार लटक रही है, जो ज्ञानरूपी ढालसे हीन आत्मा पर पड़ कर उसको हानि पहुंचाये बिना नहीं रहती।

बच्चे, जवान होना चाहते हैं, और जवान, बचपनके सुख चले जाने के निसासे डालते हैं। गरीब मनुष्य निर्धनताकी हथकड़ीसे हाथ नहीं चल सकनेसे रोता है, तो धनवान् 'कहीं गरीब न होजाऊं?', इस विचारसे दुःखी रहता है और सुख की भ्रमभरी छायाके पीछे पीछे सारी पृथ्वीको खोजते फिरते हैं। कितनी ही वार इस जीवका ऐसा जान पड़ता है कि अमुक धर्मका पालन करनेसे अथवा अमुक दर्शनके अभ्याससे या अमुक विचारके उत्पन्न होनेसे निर्भय सुख और शान्ति उसे मिलचुकी? परन्तु दूसरे ही क्षण में कोई बड़ी भारी लालच आ पहुंचती है और वे समझाती हैं कि यह धर्म (मत) यह दर्शन या यह विचार लालचोंको रोकनेकी सामर्थ्य देनेमें परिपूर्ण नहीं है। और वह धर्म (मत) वह दर्शन या वह विचार जिसमें कई वर्षों तक आनन्दपूर्वक मनुष्य रहा हो— निष्फल हो जाते हैं।

तो क्या दुःख और चिन्तासे बचनेका कोई मार्ग है ही नहीं? क्या ऐसे कुछ साधन ही नहीं हैं जिससे

दुःख के बद्दल बिखर जांय ? क्या नित्य सुख, नित्य निर्भयता और नित्य शान्ति ये मूर्खोंके झूठे स्वप्न-मात्र हैं ? नहीं, कभी नहीं । दुःखका हमेशाके लिये दूर कर देने का मार्ग है । दर्द निर्धनता और अप्रिय संयोग इस तरह दूर किये जा सकते हैं कि फिर उन-के आनेका काम ही नहीं । अखण्ड और अनन्त सुख शान्तिके मिलनेकी युक्ति है ही । जो मार्ग हमें इस सुखको प्राप्त करा सकता है उसका प्रारम्भ 'दुःख की प्रकृति समझनेकी शक्ति, की नजदीकमें होता है ।

दुःख है ही नहीं ऐसा कहना या दुःख की ओर आंखें बन्द करलेना यही काफी नही हैं । दुःखको स-मझना चाहिए । दुःख दूर करने के लिये परमात्मासे प्रार्थना करना ही काफी नहीं है । परन्तु दुःख क्यों आया और वह तुम्हें क्या शिक्षा देता है—क्या पाठ पढ़ाता है यह ढूंढ निकालना चाहिए । हथकड़ी पड़े हुए हाथ देखकर क्रोध करना—चिड़ चड़ करना या रोना चिल्हाना किसी कामका नहीं है । परन्तु क्यों और किस प्रकारसे हथकड़ी पड़ी इस बातका तुम्हें विचार करना चाहिये । इसलिये हमें चाहिये कि हम स्वयं अपनी परीक्षा करें—हम स्वयं अपने आप को पहचा-नना सीखें; प्रयोगशाला रूपी इस संसार में हमें एक क्रोधी बालकके जैसे न बनकर सीखनेकी इच्छा रखना

चाहिये। क्या सीखने की इच्छा? तो मैं कहूं कि जो जो बनाव बनते हैं वे सब धीरे धीरे अनुभव देकर उच्च दशामें लानेके लिये ही बनते हैं और अन्ततः वे पूर्ण दशाको पहुंचा देते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि बनाव हमें क्या सिखाते हैं इसके जाननेकी पूरी पूरी दरकार रक्खें। क्योंकि जब हम दुःखको अच्छी तरह समझ लेंगे तब हमें भलीभांति मालूम हो जायगा कि दुःख कोई दण्ड दिनाकी शक्ति नहीं है परन्तु मनुष्य पर आती हुई एक क्षणभरकी शिक्षा है। और जो सीखने वाले हैं उन्हें उससे बेहद लाभ होता है। दुःख कुछ बाहरी द्रव्य पदार्थ नहीं है, यह तो तुम्हारे अन्तःकरणका 'अनुभव, है। यदि तुम धीरे धीरे दृढ़तापूर्वक अपने अन्तःकरणको खोजो और सुधारते रहो तो तुम दुःखके 'मूल, और दुःखके 'स्वभाव, को पहचान सकोगे और ज्ञान होने पर तुम उसकी 'दवा, भी जान सकोगे।

सब दुःख साध्य हैं। दुःखमात्रको दूर करनेके उपाय हैं। अत एव कोई दुःख स्थायी नहीं है। दुःखका मूल अज्ञानतामें है। अलग अलग पदार्थोंका स्वभाव और उनके परस्परका संबंध न जाननेके कारण ही दुःख उत्पन्न होता है। और जब तक यह अज्ञान रहता है तभी तक दुःख कायम रहता है। संसारमें ऐसा एक

भी दुःख नहीं है जो अज्ञानतासे उत्पन्न न होता हो और हम उससे मिलते हुए पाठको सीखें तो हमें विशेष कुशाग्रता न दे और तत्पश्चात् स्वयं अदृश्य न हो जाय। मनुष्य दुःखमें खड़ा ही करते हैं इसका कारण यह है कि दुःख जो पाठ सिखानेको आता है मनुष्य उसे सीखनेकी परवा नहीं करते।

'दुःख' अंधेरा है और सुख प्रकाश है यह कथन कुछ अनुचित नहीं है, क्योंकि प्रकाश सदा ही विश्वपर रेल मठेल पड़ता है और अंधकार एक छोटे पदार्थसे पड़ी हुई परछांई मात्र है। प्रकाशकी हद नहीं, अंधेरेकी हद है, अथवा यों कहें कि अंधेरा वेहद प्रकाशमें एक क्षुद्र चीजकी परछांई मात्र है। इसी तरह "परमसुख" एक ऐसा तत्व है जो विश्वमें खूब छा रहा है और 'दुःख' उस वेहद सुखमें अहंकारसे पड़ी हुई एक तुच्छ परछाईं है। जब हम कहते हैं कि रात पड़ गई उस समय चाहें जितना ज्यादा अंधेरा क्यों न हो तो भी अंधकारका विस्तार कितना? इस अपने भूगोलका आधा हिस्सा ही अंधकारसे आच्छादित होता है। अपनी पृथ्वीका आधा भाग प्रकाशित रहनेके सिवाय अन्य असंख्य ग्रह प्रकाशित रहते हैं। और पृथ्वीके आधे भागको भी थोड़े समयके वाद प्रकाश मिल जाता है, यह ध्रुव है॥

इस बात परसे, हे मनुष्य ! यह समझना चाहिये कि जब तुझ पर चिन्ता दर्द दुःख वगैराके बद्दल आ चढ़े और तू स्वयं थकेहुए पैरोंसे तंग खाता हुआ चले तो तुझे समझना चाहिये कि असीम सुखमय प्रकाश और तेरे पिंडके बीचमें राहुरूपी तेरी स्वार्थमयी इच्छायें और मनोकामनायें आड़ी आ गई हैं। अर्थात् सुख का असीम प्रवाह तुझपे सीधा गिरता है परन्तु तेरी वासनायें स्वार्थभरी इच्छायें उसके बीचमें आकर कुछ समय तक तेरे ऊपर परिछाई डालती है कि जिसे तू दुःखके नामसे पहचानता है। जैसे परिछाई डालने वाला पदार्थ दूर हो सकता है, वैसे ही दुःख रूपी परिछाई डालनेवाली वासनायें भी दूर हो सकती हैं। और ऐसा होने पर आनन्द और सुखका प्रकाश तेरी आत्मापर अपने आप पड़ सकता है। जो अंधकार मय परिछाई तेरे पर पड़ती है उसका डालनेवाला भी स्वयं तूही है, और कोई नहीं। परिछाई कोई वस्तु नहीं है। वह कहीं रहती नहीं है, न वह कहींसे आती है और न वह कहीं जाती है। वह मूल वस्तुके साथ देख पड़ती है और उसके अदृश्य होनेके साथ ही अदृश्य हो जाती है। उसी तरह तेरे दुःख तेरी स्वार्थ भरी इच्छाओंकी परिछाई के रूप हैं वे तेरी स्वार्थमयी इच्छाओंके दूर होते ही अपने आप दूर हो जांयगे।

परन्तु यहां पर एक सवाल पैदा हो सकता है कि दुःखको परिछाईमें जाना क्यों चाहिये? तो इसका कारण एक ही है और वह अज्ञानता है। अज्ञानता के कारण ही बालक अग्निमें हाथ डाल देता है या सर्पको पकड़ने दौड़ता है, परन्तु जब अग्निसे हाथ जल जाता है या सर्पदंश लग जाता है तो फिर वह उस कामको नहीं करता। उसी तरह मनुष्य अज्ञानतासे दुःखोत्पादक कर्म करने लग जाता है और उसके फल स्वरूप दुःख पाता है। तब कितने ही तो शिक्षा ग्रहण करते हैं कि यह फल अमुक कर्मका फल है। और कितनेक तो कुछ सार ही नहीं समझ सकते। जो कर्म और कर्मफलका सम्बन्ध समझ लेते हैं वे फल भोगते रहने पर भी दुःखी नहीं होते, और जो इस सम्बन्ध को नहीं समझते वे बारबार वैसा ही कर्म करते हैं और फल भोगते हैं। संसार दुःखी ही है इस बातको मानने वाले ऐसे ही लोग हैं। उनकी दशा ठीक उस अंधे कैसी है, जो शहर अंदर जानेके लिये गढ़की दीवार पकड़कर दर्वाजे तक पहुंच जाता है और दर्वाजा आते वक्त मारे खुजलीके दीवार छोड़कर खुजाता हुआ दर्वाजेसे आगे निकल जाता है और फिर गढ़के चक्कर लगाता फिरता है। इसी तरह इस बातको न जानने वाला मनुष्य कि दुःख अमुक कारणसे हुआ, बार बार

वैसे ही कामोंके चक्करमें पड़ा रहे इसमें सन्देह ही क्या है?

एक मूर्ख विद्यार्थी पाठ याद न करे और मार खाता रहता है, उसी तरह संसार प्रयोगशालामें मिलते हुए अनुभवको जो हम परवा न करें और दुःख उठाया ही करें तो हम अंधकारकी परिछाईमें दुःख में दरिद्रतामें सड़ें उसमें क्या आश्चर्य? इस लिये जो मनुष्य यह चाहते हों कि हमें जो दुःख घेरे हुए बैठा है वह दूर हो तो हमें चाहिये कि हम सांसारिक प्रयोग जो कुछ हमें सिखावे उसे सीखनेके लिये तैयार रहें और इस बातकी परवा न करें कि हमारे लिये क्या अप्रिय है और क्या कठिन? और जो हम ऐसा न करें तो हमें चातुर्य, सुख और आनंदकी प्राप्तिकी आशा भी छोड़ देना चाहिये।

एक मनुष्य अंधेरी कोठरीमें जा बैठे और कहे कि प्रकाशका अस्तित्व ही नहीं है, तो क्या उसका कहना सच्चा मान लिया जागया? प्रकाश नहीं है तो उस छोटीसी कोठरीमें नहीं है, बाहर तो प्रकाश ही प्रकाश है। इसी तरह या तो तुम प्रकाश है ही नहीं और ग्राहक सत्यके प्रकाशसे दूर अंधकार और दुःख की कोठरीमें बैठो अर्थात् वहम, स्वार्थ और भूलसे बनी हुई कोठरीमें बैठकर अपने दुःखोंपरसे कुदरत ही दुःख भरी है ऐसा कहो, या भूल स्वार्थ और वहमकी को-

ठरी को तोड़कर सर्वव्याप्त तेजस्वी प्रकाशमें आनन्द भोगो, दोनोंमें जो अच्छा लगे सो करो।

प्रकरणके अन्तमें संक्षेपसे जो प्रकरणका सार कहें तो यह हैं कि दुःख मात्र एक क्षणिक परिछाई है, जो स्वयं हममेंसे ही उत्पन्न होती है। और कोई दुःख अकस्मात्की रीतिसे, क्रोध रूपमें या सतानेके रूपमें नहीं आते, परन्तु वे कर्मके नियमानुसार अमुक रीति से ही आते हैं और उनके आनेका कारण हम स्वयंहै। तथा उन दुःखोंके योग्य ही हम हैं और उनको हमें जरूरत भी है इसी लिये वे आते भी हैं। उन २ दुःखों के सहन करनेसे और उनका तत्त्व समझनेसे हम विशेष उत्तम, विशेष दृढ़ और विशेष बुद्धिमान बनते हैं। जो यह विचार मनुष्यके मस्तिकमें बराबर जम जायगा और उसके कामोंमें बराबर दिखाई देगा तो वह दुःखको सुखमें परिणत कर सकेगा और भाग्यको अपने हाथका खेल बना सकेगा,

प्रकरण २

दुःख क्या चीज है !

व
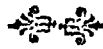
नाव स्वयं दुःख देनेवाला नहीं है, परन्तु हम उसे वेसी पोशाक पहनाकर दुःखदाई बना लेते हैं। इस सिद्धान्तका एक उदाहरण दें। मान लो कि दो सहोदर भाइयोंने एक साहूकार के यहां पूंजी रक्खी और उस साहूकार ने दिवाला निकाल दिया। यह सुनकर एक भाई उदास हो कर दुःख पाता है और दूसरा कहता है कि अच्छा, पैसा गया तो वह कुछ उदास होनेसे पीछा नहीं जायगा, जो आयेगा तो उद्योग और उत्साह से, और ऐसा निश्चयकर दूने उत्साह से काम करना प्रारम्भ किया। और कुछही समयमें पहिले से भी अच्छी दशामें आ गया। और पहिला भाई दुःखको रोता हुआ भाग्य का दोष मानकर दारिद्र में पड़ा रहा और दिवाले को कोसता रहा। जब एक भाई उसी घटना से विशेष सुखी हो गया तब दूसरा दुःखके हाथ का खेल बन गया। इसमें वास्तवमें, घटनामें सुख या दुःख देनेकी शक्ति नहीं है परन्तु उसे जिस तरहका लोग स्वरूप देते हैं वेसे ही वह हो जाती है। दिवालेकी

घटना दोनों भाइयोंके सम्बन्ध में समान थी और उससे दोनोंको दुःख या तो दोनों का सुख होना चा-चाहिये था। परन्तु जुदा २ जीव पर घटना ने जुदा २ प्रभाव डाला है। इससे सिद्ध होता है कि घटना में अच्छापन या बुरापन नहीं परन्तु जिन पर घटना घटती है उन्हीं में अच्छापन या बुरापन है और वे उसे अपनीसी बना लेते हैं।

अमुक मनुष्यने मेरे विरुद्ध अमुक आचरण किया और मुझे प्रतीति हुई कि इससे मेरी आबरू में धक्का पहुंचेगा, मैं पिस जाऊंगा या दुःखी हूंगा। इस विचार ने मुझे रात दिनके दुःखमें दबा दिया और शरीर को तपा डाला। और इस मान्यता से जो कुछ होना चाहिये वैसा ही हो रहा हो ऐसा मैंने देखा परन्तु इतने में ही सुभाग्य वश एक दिन प्रातःकाल में मुझे स्मरण हुआ कि मैं महावीरका अंश हूं और विचार आया कि मुझे मेरे सिवाय दुखी करने वाला है ही कौन! घटनाओं की सामर्थ्य ही क्या है जो मुझे चैतन्य स्वरूपको महावीरके अंश को सतावें! उसी समयसे यह विचार मेरे मस्तिष्कमें से काफूर हो गया कि शत्रु मुझे मटियामेट कर डालेगा और धीरे२ मालूम होने लगा कि शत्रु समान आचरण करनेवालों के भारी २ प्रयास धूलमें लेप करनेसे जैसे होते हैं।

इस दृढताका परिणाम यह हुआ कि मैं अपने विचारों पर अधिकार रखना सीखने लगा, और आत्माको निरर्थक, हानिकारक हो ऐसी चीजोंको निकाल दे कर उनकी जगह पर आनन्द, शान्ति, प्रेम, दया, सौन्दर्य, अमरता, गांभीर्य और समता भरनेका शुरू करने लग गया।

जैसे घटना किसीको सुखमयी प्रतीत होती है और किसीको दुःखमयी, इसी तरह पदार्थ भी किसीको आनन्ददायक जान पड़ते हैं और किसीको अरुचिकारक। पदार्थ स्वयं न आनन्द दायक है, न अरुचिकारक, देखने वाला ही आनन्दकी सुन्दर पोशाक पहना देता है या अरुचिके चींथड़े और इसीसे वे वैसे दिखाई देने लग जाते हैं। जिस फूलको हम अपने पैरोंके नीचे कुचल डालते वही एक कविको सौंदर्यकी मूर्त्ति जान पड़ता है। समुद्रको देखकर जब एक मनुष्य कहता है कि "जहां असंख्य जहाज टूटे हैं और हजारों मनुष्य डूब मरे हैं वही यह जगह है!" तब दूसरा मनुष्य कहता है "अखण्ड वाद्य बजाने वाला यह एक वाजींत्र है। मनको महत्ता और गंभीरता सिखाने वाला यह महाशान्त गुरु है! रत्नोंकी निधि है! और असंख्य चमत्कारोंसे भरी हुई यह पुस्तक है!" जहां साधारण आदमीको दुःख-घोटाला

देख पड़ता है वहीं एक तत्वज्ञानीको कार्य-कारणका पूरा पूरा सम्बन्ध दिखाई देता है!

जैसे हम घटना और पदार्थको अपने विचारके कपड़े पहना देते हैं वैसेही दूसरे मनुष्योंकी आत्माको भी अपने विचारसे आच्छादित करते हैं। और ऐसा प्रायः कई बार होता भी है। प्रत्येक मनुष्यको कपटी, हरेकको लुच्चा, चाहे जिसे झगड़ालू, हर किसीको स्वार्थी या व्यभिचारी कहने वाला मनुष्य कदाचित स्वयं ऐसा होता है और अपनेमें ऐसे २ ऐब होनेके कारण उन्हीं ऐबोंको औरोंमें आरोपित करता है। उसके पास जैसे बुरे वस्त्र हैं वैसे ही औरोंको भी पहनाता है। अच्छे लावे कहांसे? व्यभिचारी मनुष्य सदा अपनी स्त्रीके लिये शंकाशील रहता है, खूनी सदा अपने ऊपर फिरती हुई तलवार ही देखता है, सदा दगा करने वाला दगाके ही स्वप्न देखता रहता है।

इससे विपरीत, प्रेमी पुरुष सर्वत्र प्रेम ही की झांकी किया करते हैं, धर्मात्मा जन सबको धर्मिष्ठ समझते हैं। प्रामाणिक मनुष्य किसीको अविश्वास नहीं करते। जिनके परम तत्त्व लहरें मार रहा हो वे सब जगह परमतत्त्व ही पाते हैं।

प्रकृतिका नियम अथवा कार्य कारणका सम्बन्ध ऐसा है कि मनुष्य जो कुछ बाहर निकालता है वही

भीतर खींचता है और इससे अपने जैसे ही अच्छे या बुरे मनुष्योंकी संगति उसे मिलती है। अंगरेजीमें एक कहावत है कि "Birds of a feather flock together" अर्थात् "एकसां पांखवाले पंछी साथही फिरते हैं" और यह कहावत बिलकुल सच्ची ही है, क्योंकि क्या जड़ पदार्थ और क्या विचार अपने सजातीय पदार्थ और बिचारमें ही संमिलित होते हैं- "समानशीलव्यसनेषु मैत्री"

हे मनुष्य! तेरी दुनियां तेरी ही परिछाई है। इस वास्ते जो तू दया चाहे तो स्वयं दयालु बन, सत्य की इच्छा करता हो तो स्वयं सच्चा हो जो गुण बाहर देखना चाहे उसी गुणको अपने भीतर उत्पन्न कर, मृत्यु के बाद सुखमयी सृष्टिमें दाखिल होनेकी वांछा करे तो यों सोच कि यहां—इस भवमें भी सुखमय, सृष्टि है—नहीं हो ऐसा नहीं है। इस सुखपूर्ण सृष्टिमें तू इसी वक्त दाखिल हो सकता है—इस मान्यताको दृढ़ता से मान, निश्शंक होकर सम्पूर्ण श्रद्धासे मान कि तेरी दुनियाको सुखमयी बना लेना तेरे ही हाथमें है, ऐसे ही विचार कर, इस विचार पर मनन कर, ध्यान दे। ऐसा करने बाद तेरा आत्मा शुद्धसे शुद्ध होता जायगा और उसे भलीभांति अपनी शक्ति और बाह्य घटना की और पदार्थोंकी अशक्ति अपने आप आश्चर्य रूपसे मालूम हो जायगी।

प्रकरण ३

अप्रिय संयोगोंमेंसे बाहर कैसे निकलाजावे?

इस बातको हम निश्चय करचुके हैं कि दुःख और कुछ नहीं है सिर्फ अपने अहङ्कारकी क्षणिक परिछाईं है, और इस बातका भी निर्णय करचुके हैं कि दुनिया एक ऐसा दर्पण है कि जिसमें प्रत्येक मनुष्य अपने ही प्रतिबिम्बको देख पाता है। अब हम आगे बढ़ें और कारण तथा कार्यके नियमको देखें। जो कुछ होता है उस कार्यका कारण होना ही चाहिये, और प्रत्येक कारण का कार्य होनाभी निश्चितही है। कारण कार्य नियमसे बाहर कुछ है ही नहीं। छोटेसे छोटा विचार, काम, शब्द या आसमानी घटनायें इस नियमके बाहर नहीं हैं। "जैसा बोओ वैसा लूणो,, यह कहनावत भी इसी नियमकी पुष्टि करती है। अग्निमें हाथ डालने वाले को दाझना ही पड़ेगा। इससे बचाव होगा ही नहीं। इसी प्रकार काम, क्रोध, द्वेष, लोभ, ये सब एक प्रकार की अग्नि हैं और इनमें हाथ डालने वाला भी अवश्य जलेगा।

मनकी इन स्थितियों को 'व्याधि, भी कहते हैं, कारण कि जब जीव, प्रकृतिके नियमोंका अपमान करता है तभी ये व्याधियां उत्पन्न होती हैं। इससे, भीतर अन्तःकरणमें अव्यवस्था हो जाती है, बाहर भी दुःख दर्द उत्पन्न होते हैं । इससे विपरीत,–प्रेम, नम्रता, पवित्रता ये कैसी ठंडी लहरें हैं कि जो इनका व्यवहार करते हैं उनपर शान्तिकी वायु छा जाती है और बादमें वहां स्वस्थता, सुलह शान्ति, विजय और सुभगता आ मिलती हैं।

प्रकृतिके इस नियमको समझना और उसे मान देना इसीका नाम 'समता, है, समताका यह अभिप्राय कभी नहीं है कि हम जिस स्थितिमें हैं उसी स्थिति में सन्तोष मानकर उसे सुधारनेकी परवा न करें। परन्तु समताका अर्थ यह है कि हम इस बातको अच्छी तरह समझ लें कि बाहर जितनी घटनायें बनती हैं वह सब भीतरी भावना के समान ही बनती हैं, इस लिये अनुकूल बनावके बननेकी इच्छा रखने वालेको आन्तरिक भाव भी वैसे ही अनुकूल–इस प्रकृतिके नियमको समझकर–बनालेना चाहिये और उसीके अनुकूल चलना चाहिये–अर्थात् उत्तम भावना भाते हुए शुभाचरण भी रखना चाहिये। इसीको समता कहते हैं।

शक्ति और निर्बलता, इन दोनोंके कारण भीतर ही है, जीत और हार इन दोनोंका रहस्य भी भीतर ही है। भीतर परदे हटे सिवाय बाहर भी प्रकाश नहीं होता और ज्ञान हुए बिना कभी शान्ति मिल नहीं सकती

तुम कहते हो कि हम संयोगोंमें–स्थितिमें बंध गये। तुम अच्छी स्थिति प्राप्त करनेके लिये रोते झींकते हो और अच्छी स्वस्थताके लिये ख्वाहिश करते हो और कभी कभी भाग्यने ऐसा किया कहकर उसे शाप भी देते हो, तो मैं यह तुम्हारे ही लिये लिखता हूं–यह शब्द खासकर तुम्हारे ही लिये हैं, सुनो, और उन्हें अपने अन्तःकरणमें सुनहेरी अक्षरोंसे कोर रक्खो:—

"तुम अपनी इच्छाके अनुकूल अपनी बाह्य स्थिति सुधार लेनेको समर्थ हो–शर्त केवल यह है कि, अपनी आन्तरिक स्थितिको तुम दृढ़तापूर्वक सुधार लो,,

यह मार्ग प्रथम दृष्टिसे तुम्हें ऊजड़ मालूम होगा इसका मुझे निश्चय है। परन्तु इसका उपाय क्या? भ्रम और भूल ये दोनों ही प्रथम दृष्टिसे मनोहर जान पड़ते हैं। सत्य तो प्रथम दृष्टिसे आदरपूर्वक अभिनन्दन करने लायक नहीं दिखाई देता, ऐसा होने पर भी जो उसपर लगजाते हैं, हिम्मत धारण कर उसीके अनुकूल चलते हैं; वे सुखी होते हैं। कवि लोक सत्य के पुतलेकी आसपास कांटोंकी बाड़ कल्पित करते हैं

कि जिससे उधर जानेको कोई इच्छा न करे परन्तु जो हिम्मत धर कांटोंकी परवा न कर उधर जाते हैं उन को कांटा (जो कल्पित है) लगता ही नहीं, क्योंकि वह कांटे तो ' चित्र, मात्र होते हैं।

तुम ध्यानपूर्वक तुम्हारे मनको शिक्षा दो, मानसिक निर्बलता को दूरकर दो और आत्माकी अनन्त शक्ति है ऐसा दृढ़ विश्वास रख कर उसे खिलने दो तो तुम देख लोगे कि तुम्हारी वाह्य जिन्दगी भी कितनी सुख भरी है। धीरे धीरे सुनेरी तर्कें तुम्हें मिलेंगी और जो तुम उनका विचार पूर्वक उपयोग करोगे तो न केवल अन्तःकरणकी शक्ति ही बढ़ेगी प्रत्युत सच्चे मित्र भी बिना बुलाये आआ कर मिलेंगे, बिना मांगी बाह्य मददें आआ कर प्राप्त होंगी। जैसे लोहचुंबकके पास लोहा अपने आप खिंच आता है वैसे ही सम्पूर्ण सुख आपने आप खिंच आवेंगे।

मान लो कि तुम निर्धनताकी बेड़ी में जकड़े हुए हो, तुम मित्रहीन अकेले हो और सच्चे जीसे चाहते हो कि तुम्हारे शिरका बोझ कम हो, परन्तु वह बोझ बराबर चला ही जाता है, और तुम्हें मालूम होता है कि मेरे पर विशेष विशेष अन्धेरा फैल रहा है तुम वड़बड़ाते हो और भाग्यको दोष देते हो, तथा अपने जन्म, मा बाप, या मालिक पर ऐब लगाते हो और कहते हो

कि इनके ऐबसे मुझे दुःखी होना पड़ता है। परन्तु सत्र! तुम्हारा बड़बड़ाना अथवा चिल्लाना व्यर्थ है, क्योंकि उनमेंका एक भी कारण तुम्हें दुःख देनेवाला नहीं है। दुःख देने वाला कारण स्वयं तुममें ही है और जहां 'कारण' है वहीं उसका 'उपाय, भी है।

तुम जो दुःखकी 'शिकायत' करते हो यही कह देता है कि तुम इस दशाके पात्र हो। प्रत्येक प्रयास और हरतरहकी सुदशाका स्तम्भ रूप जो आस्था है तुममें है ही नहीं, इसीसे तुम इस दशाके पात्र हो। जो मनुष्य नियमोंका पालन करता है उसे इस विश्वमें शिकायत करनेकी कोई आवश्यता ही नहीं है।

घबड़ाना या बड़बड़ाना यह तो आत्महत्या करने बराबर है। तुम्हारे मनकी प्रवृत्ति ही ऐसी है कि तुम्हारे आसपासकी सांकलोंको तुम ज्यादा २ कड़ी बनाते जाते हो जीवन सम्बन्धी विचार करनेकी तुम्हारी रीतिको बदलो, इससे तुम्हारा बाह्य जीवन भी बदल जायगा। श्रद्धा व ज्ञानमें दृढ़ बनो और उत्तमोत्तम संयोग और तकोंके लिये तुम अपने आपको लायक बनाओ।

पहले तो जो कुछ तुम्हारे पास है उसका अच्छेसे अच्छा उपयोग करना सीखो।

क्षण भरके लिये भी ऐसी बुरी कल्पनामें न फंसना कि, छोटे छोटे लाभोंको छोड़ कर एकाएक तुम बड़ा भारी लाभ पा सकोगे। जो कदाचित् इस प्रकारका बड़ा भारी लाभ प्राप्त करोगे भी तो वह थोड़े ही समयमें नष्ट हो जायगा और जो पाठ छोड़ दिया था उसे शुरूसे पढ़ना पड़ेगा। जैसे पाठशालामें पढ़नेवालेको दूसरी कक्षामें आनेके पहिली पहिले कक्षा पास करना पड़ता है वैसे ही, जो बड़े लाभको तुम्ह खूब चाहते हो वह तुम्हें मिले उसके पहले, जो कुछ तुम्हारे पास है उसका उत्तमोत्तम उपयोग कर दिखा देना चाहिये कि हम इस योग्य हो गये। अपने पास जो कुछ हो उसका दुरुपयोग करें या उसकी परवा न करें तो इस से यह सिद्ध होता है कि हम अभी इसके योग्य भी नहीं हैं। क्योंकि, वह छोटी बात भी हमारे हाथसे निकल गई, हम छोटाकाम भी न कर सके।

सोचो कि तुम एक झोंपड़ी में रहते हो और तुम्हारे आसपास पड़ोस ऐसा है कि जो स्वास्थ्यको हानि करे। तुम बड़ा मकान और स्वास्थ्य देनेवाली जगह की इच्छा करते हो तो तुम्हें ऐसी जगहको योग्य होने के लिये पहले तो उस झोंपड़ीको ही जैसे बने स्वच्छ बनाना चाहिये, तुम्हारी शक्ति और साधन के अनुसार उस झोंपड़ी को खूब स्वच्छ और मनोहर बनाओ

तुम्हारी सादी खुराक खूब मन लगाकर पकाओ और पातल आनन्द देने वाली बनाओ। जो तुम्हारी शक्ति एक सालरीसे भी अपनी झोंपड़ीको शोभित करनेकी न हो तो हंसमुखपना और आन्तरिक वृत्तिसे, आदर सत्कार रूपी उत्तम बिस्तर से उसे सजाओ, प्रेमके श-ब्दोंरूपी गद्दी तकिये लगा दो और धीरज रूपी चित्रोंसे शोभित करो। ऐसी सजावट कभी बिगड़ेगीही नहीं।

इस तरह अपनी झोंपड़ी को भव्य बनाओगे तो तुम इससे भी श्रेष्ठ मकानमें रहने योग्य बनोगे और समय पर उत्तम मकानमें रहोगे भी, जो मकान तुम्हारे आनेकी बाट देखरहे हैं। विलम्ब है तो केवल इतना ही कि तुम उनमें रहने योग्य बन जाओ।

सोचो कि तुम मनन और प्रयासके वास्ते ज्यादा समय चाहते हो। तब पहले तो तुम्हें जितना कुछ फुरसतका समय मिले उसका अच्छासे अच्छा उपयोग करो। हाथके समयको खोना और विशेष समयके लिये हाय हाय करना अयोग्य है। "समय नहीं मिलता, समय नहीं मिलता,, इस तरह चिल्हानेसे २५ वां घंटा नहीं हो जायगा। उलटा १ घंटा चिल्हानेमें जाता र-हेगा और सरीतकी शान्तिमें धक्का पहुंचनेसे जो काम ४ घंटे में कर सकते थे वह अब ६ घंटे में कर सकोगे,

इससे २ घंटे का और नुकसान होगा। इससे ऐसा न कर अपना टाइम टेबल सम्हालो, गपसपमें और निकम्मे तरंगोंमें या तुच्छ कामोंमें जो समय खोते हो उसे बन्द करो। तुम्हारे पास जो समय है उस का अच्छा से अच्छा उपयोग करना न सीखो और ज्यादा समय के लिये 'हाय हाय, करो यह किस कामका ?।

गरीबी और समयकी न्यूनता इन्हें जो तुम दुःख मानते हो तो ये दुःख नहीं हैं। तुम्हें इनसे कुछ अड़चन होती हो तो इस का कारण यह है कि तुम्ह ने उन्हे अपनी निर्बलताकी पोशाक पहनादी है। गरीबी और फुरसतकी कमीमें तुम जो दुःख देखते हो वे दुःख उनमें नहीं हैं परन्तु तुममें स्वयं हैं। इस बातको अच्छी तरह समझ रखना कि तुम जैसा अपना मन बनाओगे वैसा ही तुम्हारा भविष्य बनेगा और इस हिसाबसे तुम्ही तुम्हारे नसीबके घड़ने वाले हो। यह अच्छी भांति समझ लोगे और इसके मुआफिक आत्मसुधार करोगे तो दुःख के कारण ही तुम्हे सुख देने वाले हो जांयगे। जब ऐसा होजायगा तब तुम्ह गरीबीको उपयोग सहनशीलता, हिम्मत और श्रद्धा के सद्गुणोंका विकास करनेमें करोगे। और समयका अभावरूपी दुःखका उपयोग काम जल्दी करनेमें, निश्चय

शीघ्रतासे करनेमें और अलग अलग समयके अलग अ-लग कामोंमेंसे कुछ न कुछ समय बचा लेने के काम में होगा। जैसे काली जमीनमें उत्तमोत्तम पुष्प खिलते हैं वैसे ही गरीबीकी कालीभूमिमें उत्तमोत्तम मनुष्यरूपी पुष्प उगते हैं और खिलते हैं। जहां मुसीबतोंके सा-म्हने टक्कर झेलना पड़ता है और अप्रिय संयोगों पर जय पाना होता है वहीं पर सद्गुण ज्यादा उत्तम स्थितिमें होते हैं और अपना प्रभाव ज्यादा दिखाते हैं।

कदाचित ऐसा भी मौका हो कि तुम किसी जा-लिम, वे समझ मनुष्यकी नौकरी (सेवा) में हो और तुम्हें मालूम हो कि तुम पर जुल्म हो रहा है तो भी निश्चय समझना कि यह जुल्म भी तुम्हें कुछ न कुछ शिक्षा मिलनेके लिये आवश्यक है। तुम्हें अपने मा-लिक की निर्दयताके बदलेमें क्षमा और नम्रता बता-ओ, धैर्य और आत्मनिग्रह के हथियार सदा तैयार रक्खो, उन २ खराब संयोगें का लाभ लेकर उनमें से मानसिक और आत्मिक बलोंको बढ़ाओ। ऐसा करने से तुम अपने मालिकके लिये 'गुरु, का काम दोगे, उसे अपने वर्ताव पर शरम आयगी और साथ ही साथ तुम आत्मिक गुणको प्राप्त करोगे, कि जो गुण तुम्हारे वास्ते अनुकूल संयोग उत्पन्न करेगा और वैसे संयोगों के लिये तुम्हें योग्य बनावेगा।

" हाय रे इस गुलामीमेंसे कब मुक्त होऊंगा ? „ इस तरह कभी न बड़बड़ाओ, परन्तु अपनी उत्तम चाल से गुलामीके दरके बाहर अपनी दृष्टि रक्खो ! दूसरोंके गुलाम बनना पड़ा ऐसी शिकायत करनेके पहले इतना विचार अवश्य करना कि कहीं तुम स्वयं अपने गुलाम तो नहीं बनगये हो ? इतना तो अवश्य जानना कि कहीं विकारग्रस्त आत्माके तो तुम गुलाम नहीं होगये हो ? अन्तःकरणमें देखो तो तुम्हें स्वयं जान पड़ेगा कि तुम स्वयं अपने आप पर दयाहीन हो। तुममें स्वयं गुलाम जैसे विचार, गुलाम जैसी इच्छायें, गुलाम जैसी आदत और गुलाम जैसी चाल हैं, इन सब पर जय पाओ, दुरात्माके गुलाम न हो, फिर किसी मनुष्यका सामर्थ्य नहीं है कि तुम्हें गुलाम बनावे। तुम आत्मा को जीतोगे तो उलटे सयोगोंको भी जीतोगे और सब कठाई दूर हो जायगी।

'श्रीमन्त हम पर ज़ुल्म करते हैं, ऐसी बूम भी मत पाड़ो। क्या तुम छाती पर हाथ रखकर कह सकते हो कि जो तुम स्वयं श्रीमन्त हुए होते तो ज़ुल्म नहीं करते ? खूब याद रखना कि कभी न पलटे ऐसी कुदरत का कायदा ऐसा है कि जो आज ज़ुल्म करता है कल ज़ुल्म सहेगा। और इस कायदेके पंजेसे बचनेका कोई उपाय ही नहीं है—

" कहुाण कम्माण न मोक्ख अथी ,,

इसलिये हिम्मत और श्रद्धामें मजबूत बनो । शाश्वत न्याय और शाश्वत सुखकी भावना करो। मैं--तू--वह ऐसे रूपविषयक या कायिक (Personal) और नाशवन्त विचारोंको छोड़कर आत्मिक और अमर विचारोंमें चढ़ो । " मुझे कोई सताता है या दुःख देता है ,, ऐसे भ्रमको ही दूर फैंक दो और अपने आन्तरिक जीवनको सूक्ष्मताके साथ देखकर और उसके नियमोंको समझ कर आत्मसाक्षी से सीखो कि, तुम्हें वास्तवमें दुःख तो जो कुछ तुम्हारे अन्दर है उसी से ही हो सकता है, औरसे किसीसे नहीं ।

दूसरोंको दोष देकर अपना बचाव न करो, क्योंकि इससे (जैसे एक मूर्ख पिता अपने क्लेशी पुत्रका पक्ष ले कर उस का अहित करता है वैसे ही) तुम अपने आत्माका बिगाड़ करते हो ।

दूसरों पर ऐब लगाना छोड़ो स्वयं अपना दोष ढूंढो। तुम्हारे जिन कामोंमें पवित्रताको लवलेश भी धक्का पहुंचा हो उन्हें सर्वोत्तम न गिनो। ऐसा करनेसे अभयस्थल पर मकान बनाओगे, जिस मकानमें हर तरह सुख और आराम ठीक समय पर अपने आप आ पहुंचेंगे ।

गरीबी या अप्रिय संयोगोमेंसे छूटनेके लिये इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है और वह उपाय 'मैं मैं तू तू' के विचारोंको दूर करनेमें समाया हुआ है। क्योंकि दुःख या अप्रिय संयोग उन विचारोंकी परछांईका ही नाम है। सच्ची लक्ष्मी पानेकी इच्छा हो तो सद्गुणोंसे आत्माको भरो। हृदयकी शुद्धिके विना सच्ची आबादी कभी होना ही नहीं है। कई वार यह देखनेमें आता है कि बेईमान मनुष्य पैसे वाले हो जाते हैं। परन्तु वह दौलत सची लक्ष्मी नहीं है। क्या वे लक्ष्मीवान होनेपर भी सच्चा आनन्द—आन्तरिक आनन्द पा सकते हैं? क्य उनके शरीर और मन गरस (तन्दुरस्तीकी हालतसे और ही तरहके) नहीं होते? इस तरहकी लक्ष्मी (जो सच्ची लक्ष्मी नहीं है) और तुम्हारी गरीबी (हृदयकी श्रीमंताई) में कितना भेद है जो यह जानना हो तो तुम्हारे अन्तरात्मारूपी म-ठमें—उपासरेमें मन्दिरमें—मसजिदमें-गुफामें-चर्चमें प्रवेश करो। अहंकारके विचार-नाशवान वस्तुओंके विचारों को छोड़ कर अमर और सर्वव्याप्त विचारोंमें प्रवेश करो। इस पवित्र मंदिरमें प्रवेश करनेसे आपको जान पड़ेगा कि मनुष्योंके अच्छे बुरे विचार और प्र-यत्नोंका क्या परिणाम होता है। तुम जान सकोगे कि अनीति साज श्रीमन्तोंको फिर गरीबीमें आना प-

डेगा और कदाचित् श्रीमंताईमें मर भी जायं तो भी अपनी अनीतिके कडवे फल चखनेके लिये पुनर्जन्म ग्रहण करना ही पड़ेगा। चाहे फिर भी वह धनवान ही क्यों न हो परन्तु जब तक दीर्घकालिक अनुभव और दुःखोंमेंसे आन्तरिक लक्ष्मी नहीं सम्पादन करें तब तक उन विचारोंको जन्म मरणके चक्रमें घूमना ही पड़ेगा। दूसरे शब्दोंमें कहें तो आन्तरिक लक्ष्मी अनुभवसे ही मिलती है। अनुभव होनेके लिये मुसीबतें उठाना ही चाहिये और उन दुःखोंको सीधे सीधे भुक्तना आदमीको पसंद नहीं पड़ता है ऐसा देख प्रकृति देवी उन्हें वाह्य लक्ष्मी देती है. जिसके कारण उसे दुःखमें अवश्य पड़ना होता है और दुःखों द्वारा अनुभव व अनुभव द्वारा अक्षय सुख मिलता है।

जो मनुष्य देखनेको गरीब है और आन्तरिक लक्ष्मीसे श्रीमन्त है अर्थात् नीतिमान है वह वास्तवमें श्रीमन्त है और गरीबीमें होते हुए भी वह प्रतिदिन 'श्री' की ओर प्रयाण करता है और एक न एक दिन वह उसे वर ही लेगा।

जो चाहते हो कि हम उत्तम दशामें आवें उन्हें एक दम उछल कर उसे न पकड़ना चाहिये। जहां स्वयं है वहां से उस दशा तक जिस पर वह पहुंचना चाहता है, दोनोंके बीचमें एक स्थान मुकर्रर करना

चाहिये। ऐसा न करनेसे मूर्ख बन्दरकी तरह उसे बीचमें ही पड़ना पड़ेगा। वह स्थान नीतिका है। पहले नीतिको अपना लक्ष्य विन्दु बनाना चाहिये। क्योंकि वहां पहुंचे वाद उत्तम स्थिति पर पहुंचना बहुत सुलभ हो जायगा। लक्ष्मीके लिये ललचाना मूर्खता है। दुनियांमें इतने ज्यादा पाप होते हैं वह इस एक सीधे से नियमको नहीं जाननेके कारण ही होते हैं कि नीतिदेवी जब तक लक्ष्मी देवीको समझा बुझा कर तुम्हारे पास न लावे तब तक लक्ष्मीदेवी तुम्हारे जोरो जुल्मसे तुम्हारे पास कभी न ठहरेगी। उसे तुम्हारे पास लानेके लिये तुम्हें अनेक जुल्म करने पड़ेंगे (और इन जुल्मोंसे भविष्यमें अनेक जुल्म सहन करनेको आप अपनेको जोखमदार बनाते हो)। तुम्हें अनेक अनर्थ करने पड़ेंगे इतना ही नहीं लक्ष्मी ऐसे हाथ आई लक्ष्मी तुम्हें भांति भांतिसे सतायगी। जबरन लाई हुई स्त्री कभी आराम न देगी, जरूर वह दूर हट जायगी और संभव है कि विष भी दे देवे। इसी भांति विधिपूर्वक न ग्रहणकी हुई लक्ष्मी घर आने पर भी तुम्हें पामाल कर देगी इसमें कुछ अतिशयोक्ति नहीं है यह सृष्टिके नियमकी बात है।

फर्ज करो कि तुम्ह किसी सुन्दर कुमारिकाको देखकर मोहित हो गये हो, तुम्हें उससे विवाह करना

है, क्या वह तुम्हारी आजीजीसे तुम्हपर फिदा हो जायगी ? या तुम्हें अपने भले गुण, मधुर वाणी, उत्तम रीतिभांति, मोहक लावण्य आदिसे उसके चित्तको आकर्षित करना पड़ेगा ? तुम्हें तो बहुत भी लगन लग रही हो कि झट घरसे दौड़ उसके घर जाकर पाणिग्रहण कर लूं ! परन्तु क्या कभी ऐसे काम बनेगा ? नहीं हो तुम्हें ऐसी योजना करना पड़ेगी जिससे तुम्हारे गुण, तुम्हारी खूबी, तुम्हारा रूप, तुम्हारी रीति भांति, उसके जाननेमें उसके देखनेमें आवें। ऐसा करने से तो कन्या स्वयमेव तुम्हारी ओर खिंचेगी और तुम्हारे विवाहका सबी ठीक ठाक हो जायगा। ऐसा ही विवाह दोनोंको सदा प्रेममय रक्खेगा। यही लग्न दृढ़ लग्न है। और जो, आजकल जैसे अंग्रेजोंमें होता है वैसे करोगे अर्थात् कन्याके पास (लक्ष्मी पास) याचना करते रहोगे तो उसके पैरों पड़ प्रेमभिक्षा करोगे तो कदाचित् वर तुम्हें वह भी ले तो भी उसका परिणाम यह होगा कि थोड़े रोज तक हेतका 'नाटक' होनेके बाद हमेशके लिये क्लेशकी गर्जना ही होती रहेगी ! अपने आर्यावर्तकी पूर्वकालकी सती गुण देखकर पतिको ढूंढ लेती थी, न कि पति पत्नीको ढूंढता फिरे, इससे वे कैसी सुशीला होती थी कैसे शील पालती थी पतिके लिये जीव तक दे डालती थी यह सब

को विदित है। लक्ष्मीके संबंधमें भी ऐसा ही है। लक्ष्मी की इच्छा रखने वाले मनुष्यको चाहिये कि पहले वह अपने आपको सद्गुणोंसे अलकृत करे, फिर वह विचारा कन्या अपने आप पात्रको ढूंढ लेगी। और सदाके लिये उसके साथ रहेगी। इस लिये आबादी की इच्छा वाले मनुष्यको चाहिये कि धन प्राप्ति ही अपना लक्ष्य बिन्दु न बनावे परन्तु निःस्वार्थ परोपकार और जगहित करनेमें लगे रहकर अपनी आत्मा का विकास करे। इससे ठीक समय आये आबादी आप ही आ पहुंचेगी।

तुम कहते हो कि तुम अपने लिये नहीं परन्तु परोपकारके लिये लक्ष्मी चाहते हो। जो लक्ष्मीकी इच्छा करनेमें वास्तवमें यही आशय होगा तो लक्ष्मी आवेगी और फिर आवेगी। और लक्ष्मीवान् होनेपर भी जो तुम अपने आपको लक्ष्मीके मालिक नहीं परन्तु लक्ष्मीके मुनीब (गुमास्ता) मानोगे तो तुमसे अवश्य लक्ष्मी आकर भेंट करेगी ही, अर्थात् तुम्हें ऐसा समझना चाहिये कि हम कुछ लक्ष्मीके मालिक नहीं हैं, जो मनमानी रीति पर अपने स्वार्थमें इसे खर्च करदें, परन्तु उसके मुनीब हैं और वह देवी अपने दुःखी पुत्रों के हितके लिये जो जो काम करना मुझे फरमावे वैसे काम कर उस को सौंप रखने वाले मात्र हम हैं। तुम्हें

मुनीव के योग्य तनख़ाह मिले यह कुछ कम नहीं है। सेठसे मुनीव ज्यादा सुखी है। सेठ कुछ मुनीवसे ज्यादा खाता पीता नहीं है परन्तु मुनीव से विशेष चिन्ता भोगता है। मुनीव सेठ जितना ही खाता है, पहनता है, भोगता है, मान पाता है और सेठकी लक्ष्मी अपने हाथसे वापरनेका लहावा लेता है, जिस पर चिन्ता बिना रह सकता है। इस लिये श्रीमन्तोंको अपने हित के लिये ऐसे ही होना योग्य है कि "लक्ष्मीके मालिक न बनकर लक्ष्मीके मुनीव बनें। ,,

परोपकार के लिये लक्ष्मीकी इच्छा करने वालों मेंसे बहुतसों का गुप्त आशय ऐसा होता है कि बड़ाई पावें। तुम्हारे पास जो थोड़ा बहुत धन हो उसे तो परोपकारमें न लगाओ और ज्यादा धन परोपकार के लिये खर्च करने को चाहो यह कैसी हास्यजनक बात है? अभी तुम्हारे पास जितने साधन हैं उसका परोपकारमें उपयोग न कर सको तो निश्चय समझना कि ज्यादा लक्ष्मी मिलने पर तुम बड़े स्वार्थी और आत्मश्लाघा के शौकीन हो जाओगे। जो तुम्हारी इच्छा लोकसेवा करने की ही है तो लक्ष्मी मिलने की बाट देखनेकी कुछ जरूरत नहीं है। जो तुम वास्तवमें वैसे ही निःस्वार्थी हो जैसा अपने आपको सोचते हो तो तुम अपनी खुदी को लोकके हितके लिये होम दो

मनुष्य चाहे जितना निर्धन क्यों न हो वह आत्मत्याग तो कर ही सकता है। जो हृदय कुछ उत्तम काम करना चाहता है वह पैसेकी राह तकता ही नहीं है। वह शीघ्र ही यज्ञकुण्ड के पास जाता है और उस में "यह मेरा, यह मेरे हितके लिये है, यह मेरे हानिकर है „ ऐसे अहंकारके—मैंपन के बुरे तत्त्वोंको होम देता है और फिर पड़ोसी व मुसाफिर, शत्रु और मित्र सब पर सुखका निःश्वास डालता है।

जैसे कार्य—कारणका संबन्ध है वैसे ही आन्तरिक भलाई और आबादी का संबन्ध है और इसी तरह आन्तरिक बुराई और निर्धनता का भी सम्बन्ध है।

सची 'लक्ष्मी, कौनसी ? सद्गुणोंका जो समूह तुम्हारे पास हो वह।

सच्ची 'शक्ति, कौनसी ? तुम्हारे पासके सद्गुण समूहका जो तुम उपयोग करो वह।

तुम्हारे हृदयको शुद्ध करो, इससे तुम्हारा जीवन शुद्ध होगा। काम विकार, धिक्कार, क्रोध, मान, लोभ, दुराग्रह, स्वार्थांधता, ये सब गरीबी और निर्बलताके नाम हैं। विशुद्ध प्रेम, पवित्रता, नम्रता, शांत स्वभाव सहनशीलता, दया, उदारता, निःस्वार्थता, निर्ममत्व (मैं मैं पन न होना) ये सब लक्ष्मी और शक्ति के (पर्याय वाचक) नाम हैं।

निर्धनता और निर्बलता के ऊपर कहे हुए दुष्ट तत्व जैसे दूर किये जाते हैं वैसे वैसे आत्माके आन्तरिक सर्वशक्तिमान् तत्व प्रकट होते जाते हैं। और जो मनुष्य उपरोक्त तत्वोंका संपूर्ण पराजय करता है वह सारे संसारको अपने पैरोंमें नवाता है। महावीर आदि महापुरुषोंके चरित (इस सत्यके प्रमाण) हमारे सामने मौजूद हैं।

कहाते हुए श्रीमन्त क्या अप्रिय संयोगों की फर्याद नहीं करते? इससे समझ लेना चाहिये कि सुख का आधार बाह्य स्थिति पर नहीं है, परन्तु उसका आधार आन्तरिक स्थिति पर है।

कल्पना करो कि तुम एक कारखाने के मालिक हो, तुम्हें हमेशा अपने नोकरों के लिये ,हाहू, करना पड़ता है और अच्छे नौकर नहीं मिलते और मिलते भी हैं तो ठहरते नहीं है। इससे तुम मानव जाति पर कंटालना सीखते हो। तुम्हे पूरा रोजगार देना चाहते हो, तुम नौकरों को खास तरहकी छूट देना चाहते हो और ऐसा होने पर भी नौकर सम्बन्धी तुम्हें सन्तोष नहीं मिलता इस का कारण क्या? इस में दोष किसका? इस सलाहको बराबर ध्यानमें रखना कि तुम्हारी सब चिन्ता का कारण तुम ही हो। जो तुम सच्चे तौर पर भीतरी दृष्टिसे देखोगे तो तुम्हें अ-

पनी भूल फौरन मालूम हो जायगी। कदाचित् किसी तरह का तुम्हारा स्वार्थ होगा, कदाचित् तुम नौकरों पर वृथा वहम करते होगे, कदाचित् उनकी ओर तुम्हारा अप्रिय वर्ताव होगा, इस कारण तुम्हारे हृदय की जहरीली हवा तुम्हारे नौकरके हृदय पर असर करती है और यह तुम्हें हानि पहुंचाती है। तुम नौकरों की ओर प्रेमकी भावना भावो, उनके सुखका विचार करो, उनसे ज्यादा काम न लो। अपने सेठ की सेवा के लिये अपने शरीरका नाश करदे ऐसे नौकरका मिलना बड़ासे बड़ा भाग्य है, परन्तु अपने तावेके आदमियों (क्या कुटुम्बी और क्या नौकर) के हित के लिये अपने सुखको भूल जाय ऐसे सेठका मिलना और भी बड़े भाग्यकी बात है। ऐसे सेठको दूना सुख मिलता है और उसके नोकर भी सुखी होते हैं। तुम नोकर की स्थितिमें हो तब जो काम करना नहीं पसन्द करते वह काम नोकरसे लेनेका ख्याल कभी मत रक्खो

तुम्हारी जिन्दगीको बोझारूप बनाने वाले संयोग चाहे जैसे हो परन्तु उन सबमेंसे निकलनेका एक मार्ग है। और वह यह है कि आत्मशुद्धि और आत्मनिग्रह से तुम सब अप्रिय संयोगोंको प्रिय संयोगोंमें पलट सकते हो।

तुम कहोगे कि "यह कुदरतका कायदा है कि पूर्व भवके अच्छे बुरे कर्मोंका फल भोगना ही पड़ेगा फिर आज कितनी ही आत्मशुद्धि क्यों न करें उस से होना जाना ही क्या है ?" परन्तु तुम्हें ध्यानमें रखना चाहिये कि उसी कुदरत का कायदा यह भी कहता है कि "तुम्हारे पूर्वभवके कोई शुभ कर्मोंके प्रताप से ही आत्मशुद्धि की आवश्यकता समझने का मौका मिला है तो फिर इसका फल भी क्यों न मिलेगा ?" खराब परिणाम लाने वाले पूर्वभवके कुकृत्योंको आज की आत्मशुद्धिसे हम क्यों न निर्बल—सत्ता रहित कर डालें ? क्या महावीर स्वामीने 'कर्म' की हिमायत करने वाले कुम्हारको "उद्यम" का—पुरुषार्थका—पराक्रमका पाठ नहीं पढ़ाया था ?

जो मनुष्य 'अहंता' में लग जाता है वह स्वयं अपना शत्रु है और उसके बाह्य शत्रु भी बहुत खड़े हो जाते हैं और जो 'अहंता' छोड़ देता है वह आत्ममित्र है वह अपनेको बचाने वाला है। अपना ईश्वर है। उस के आस पास से पवित्र हृदय के ईश्वरीय किरण सब अंधकार को दूर कर देते हैं। और सब बादल बिखर जाते हैं। जिसने आत्मा को जीता उस ने विश्वको जीता। 'अहंपने' से दूर होते ही तुम निर्धनता में से निकल जाओगे दुःखों में से नि-

फल जाओगे, चिन्ता में से, निसासेमें से कलकलाहट में से निकल जाओगे। अहंपने का अत्यन्त जीर्ण चीथड़ा अपनी आत्मा पर से हटा दो और उसकी एवज सार्वजनिक प्रेम का चीर पहन लो। ऐसा होते ही तुम अपने भीतर स्वर्ग देखोगे और इस स्वर्ग को परिछाई बहार भी (अपनी जिन्दगी की घटनाओं में) देख पड़ेगी।

दुनियां में न्यारी २ शक्तियां हैं। उन में सबसे विशेष बलवाली शक्तियां ध्वनि रहित शान्त हैं छिपी हुई हैं। ५०० मनुष्य जितना जोर करने वाला 'वाष्प यंत्र, याने स्टीम अन्जीन ५०० मनुष्य जितनी आवाज नहीं करता और 'विद्युतयंत्र, का बल उस से भी कम आवाज करता है। यह नियम आत्मा पर भी संघटित होता है। जो मनुष्य विशेष शक्तिवाला है वह विशेष मौन रहनेवाला शान्त होता है। विचार की महती शक्ति शान्त मस्तिष्कों में ही होती है। इस जोर को जिधर लगाया जावे वैसा ही परिणाम होता है। मुक्ति और पतन इसी जोरके प्रभाव से होता है।

इस पृथिवी पर रहता हुआ मनुष्य जितना ज्ञान सम्पादन करने योग्य है वह सम्पूर्ण ज्ञान केवल आत्मनिग्रहसे (संयमसे) ही मिल सकता है। आत्मनिग्रह से मनोबल बढ़ता जाता है। इधर उधर उस का

खर्च नहीं होता "पैसा पैसे को इकट्ठा करता है, इस नियमानुसार वह बढ़ता ही जाता है और ऐसे बढ़ते बढ़ते केवल ज्ञान सम्पूर्णता मिल सकती है। आत्म-निग्रह की अखीरी सीढ़ी चढ़ने वाले को केवल प्राप्त होता है।

ज्ञानी पुरुष जो कह गये हैं कि शत्रु और मित्र की ओर समभाव रखना चाहिये अज्ञान और दुष्ट पापियों को भी क्षमा करना चाहिये ,, इस का कारण यही है कि ऐसा करने से मन को सूर्य की भांति स्थिर रक्खा जा सकता है। इधर उधर भटकने से रोक कर अपने प्रकाश में विराजमान रक्खा जा सकता है। इस तरह संचय किये हुए मनोबल विचार शक्ति और आत्मबल खिला करेंगे और आगे ही बढ़ते रहेंगे। जिस से हम नई नई शक्तियां प्राप्त करते जांयगे और अन्ततः सम्पूर्ण शक्तियों के खजाने रूप केवल ज्ञान को प्राप्त कर लेंगे।

हम में से कई मनुष्य कहते हैं कि "अकाल या महामारी जैसे संकट पापों के बढ़ने से पैदा होते हैं" इस कहनेको हम वहम कह कर हंस डालते हैं, परन्तु यह बिलकुल वहम ही नहीं है। हिन्दू धर्मगुरु भी कहा करते थे कि बाहर के सब बनाव आन्तरिक भावों के अनुकूल बनते हैं। वे मानते थे कि प्रजापर

यदि कोई आफत आई है या उन्हें विजय मिला है तो यह उसकी भली बुरी भावना के कारण ही मिली है। दो राज्यों में युद्ध हो तो वह राजा के या एकाध आदमी के कारण हुआ ऐसा मानना मूर्खता है।
'अहंपने, में लगे रहना, स्वार्थमय या दुष्ट इरादों में लगे रहना, ऐसे २ बुरे मार्ग पर मनोबल को लगाने वाली प्रजा के इस बलका फलरूप युद्ध होता है। अकाल, प्लेग आदि का भी यही हाल है। विचारों को बुरे मार्ग पर लगाना मनोवल को हीन मार्ग में व्यय करना इस से आन्तरिक स्थित की परिछाईरूप वैसी ही वाह्य स्थिति भी आ मिलती है जिसे हम अकाल, प्लेग, लाय, लड़ाई इत्यादि नामों से पहचानते हैं। सम्पूर्ण चीजें और वनाव दृश्यों को अस्तित्व में लाने वाला प्रवल शक्ति शाली शान्त विचारवल ही है। जड़ पदार्थों का पृथक्करण करने से ऐसा जान पड़ा है कि वे भी विचार में से ही वने हैं। विद्यालय और कान्फ्रेंस वगैरा पहले विचारमें से ही वने हैं फिर पृथिवी पर उनके मकान मंडप आदि वने हैं। ग्रंथ-कार, शोधक, कवि, चितारा, शिल्पी आदि पहले विचार भूमि में ही अपना २ काम पूरा करते हैं और फिर उन विचारोंको पदार्थ का रूप देते हैं।

जब 'विचारबल, कुदरत के कानून का अनुसरण कर काम करता है तब वह 'जोड़ने का, और रक्षा करने का, काम करता है और कुदरत के कानून के विरुद्ध काम करता है तब 'तोड़नेका, यानी नाश करनेका काम करता है।

"विश्वमें सूर्यके प्रकाश की भांति सुख ही सुख फैला हुआ है परन्तु दुःख तो हमारी वासनाओं के पड़छायां की भांति आ पड़ता है" इस मत में सम्पूर्ण श्रद्धा रखकर चलना यह परमेश्वर के साथ बात चीत करनेके बराबर परमात्मा की आज्ञानुकूल चलने के बराबरही है। जहां भय, घबराहट, कंटाला चिंता संशय निराशा खेद आदि हैं वहां मोक्ष नहीं है मोक्ष की व्याख्या ही यही है इन स्थितियों से और ही प्रकार की स्थितिका नाम मोक्ष है। अब विचार करो कि ऊपर की स्थितियां सब 'अहंपने, की औलाद हैं और जो सुख का सिद्धान्त ऊपर बताया उस में आस्था न रखने का परिणाम है। आस्तिक नास्तिक की परीक्षा की यही सिद्धान्त कसौटी है। जो प्रजा आस्तिक बनना चाहे उसे इस सिद्धान्त की पूजा करना चाहिये और भय चिंता निराशा आदि ऊपर कही हुई स्थितियों को राजीनामा देना चाहिये। डरनेवाला चिंता करनेवाला या खेद करने वाला स-

नुष्य पापी है ये क्रियायें पाप की क्रियायें हैं क्योंकि निश्चय नयसे देखें तो आत्मा आनन्द मय है। तब जब तक उस से भय दुःख आदि चिमटे रहें तब तक वह पाप में ही है "भावी मिथ्या नहीं होने वाला है" यह सर्वज्ञका वचन जो न माने उसे हम नास्तिक कहते हैं। तो फिर चिन्ता करने वाले को क्यों न नास्तिक कहा जाय! वह क्यों न 'मिथ्यात्व' गिना जाय! आस्तिक का सिद्धान्त (जो हमें सदा सम्पूर्णता पर पहुंचाने का उद्योग करता है) उसको उड़ा देने वाली उसके प्रभाव को धो डालने वाली और इस से हमें दुःखमयी स्थिति में होम देनेवाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है परन्तु ऊपर कही हुई भीति संशय घबराहट आदि स्थितियां ही हैं।

इन स्थितिओंको दूर करनेका नाम ही स्वतन्त्रता है। और स्वतन्त्रता प्राप्त करने का एक ही मार्ग है कि "आत्मिक ज्ञानकी धीरे परन्तु दृढ़ता पूर्वक वृद्धि करते जाना"।

प्रकरण ४ था,

भावना बल।

विवेक पूर्वक आत्मनिग्रह करनेका अभ्यास करनेसे मनुष्यको अपनेमें रही हुई विचार शक्ति अथवा भावना बलके अस्तित्वका ज्ञान होता है। और इस तरह बुद्धिपूर्वक अभ्यास करते करते जब सचमुच आत्मनिग्रहकी शक्ति आ पहुंचती है तब उस विचार शक्ति या भावनाबल का ठीक ठीक उपयोग करनेकी शक्ति भी आ जाती है। मनुष्य जिस प्रकार 'संयम' का पालन करता है अर्थात् आत्मनिग्रह करता है उसी प्रमाणमें वह बाह्य संयोगोंपर काबू करनेमें समर्थ होता है।

कितने ही मनुष्य ऐसे होते हैं जो सब प्रकारके सुखोंमें होते हुए भी दुःखके उद्गार निकलते हैं। उनके चित्तमें अनेक तरहकी शंका, भय उठाही करते हैं। ऐसोंको हम 'दुःख बढ़ाने वाले' ही मनुष्य कहेंगे। श्रद्धा और आत्मनिग्रहसे हीन मनुष्य कभी सुखी होगा ही नहीं। वह प्रत्येक संयोगका गुलाम ही होगा। ऐसे

मनुष्य दुःख पड़ते २ घबड़ाते हैं और कड़वा अनुभव पाकर आखिरमें सीधे रस्तेपर आते हैं।

श्रद्धा और निश्चय ये दोनों ही जिन्दगीकी मुख्य शक्तियां हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो पूरी श्रद्धा और दृढ़ निश्चयसे सिद्ध न हो। प्रतिदिन चुपचाप श्रद्धाका अभ्यास करनेसे अपना विचार बल चौतरफ से इकट्ठा हो कर एक जगह जमा होता है और प्रतिदिन मौन वृत्तिसे निश्चयको दृढ़ करनेसे वह इकट्ठा हुआ 'विचार बल' अथवा 'भावना शक्ति' इष्ट पदार्थकी ओर ही गमन करती है। पहली शक्तिसे वह अमुक लक्ष्यकी ओर गति करता है। इस तरह यह दोनों शक्ति इष्ट कामको पूर्ण करनेमें अत्यन्त उपयोगी हैं।

तुम चाहे जैसी स्थितिमें हो और तुम्हारा कैसा ही धंधा क्यों न हो, परन्तु जो तुम बल, उपयोगिता और विजयका अंश भी चाहते हो, तुम्हें स्वस्थता और मनःशान्ति नामके गुणोंको बढ़ाकर विचार बलको इकट्ठा करना ही चाहिए। कदाचित् धंधा वाले और संकटमें आ पड़े हो, ऐसे समयमें सम्भव है कि तुम घबरा जाओ और चिड़चिड़े हो जाओ; परन्तु यह स्मरण रक्खो कि ऐसी मानसिक स्थितिमें कायम रहनेसे अवश्य बुरा परिणाम होवेगा। क्योंकि यह सिद्धान्त है कि "जब चिन्ता छोटी बारीसेंसे प्रवेश करती

है तब बुद्धि बड़े दर्वाजोंसे निकल जाती है।" चिन्ताको चिताके समान गिना है वह ठीक ही है।

तब ऐसी चिन्ताके पंजेसे बचनेका उपाय क्या? दुनियामें बहादुर मनुष्य, अरे स्वयं देव और देवोंके देव भी कृतकर्मके फल और भवितव्यताको रोकनेमें समर्थ नहीं है; और यदि वह रोकी जा सके तो कुदरतके सब नियम औंधे हो जांय और जगतमें अन्धेर हो जाय। स्वयं तीर्थंकर—पैगंबर और देवोंको भी पूर्वकर्मके कटु फल चखने पड़े हैं। उन देवोंके मिलनी, चिन्ताके कारण जो दुःख उन्हें रोकनेकी—शक्ति किसीमें है भी नहीं। परन्तु जगत्में ऐसे विरले जन मिलेंगे अवश्य जो चिन्ताकी असर न होने दे। बरसात नहीं रोकी जा सकेगी परन्तु 'वाटरप्रूफ' कोट पहननेसे और छत्रीको लगानेसे अपने शरीरको भींजनेसे बचाया जा सकेगा। मूसलधार मेह शरीर पर गिरने पर भी वाटरप्रूफ कोट जितना अवरोध बीचमें आनेसे हमारा शरीर जलके असरसे बच जायगा। इसी तरह दुःख और चिन्ताएं हमारे पर मूसलधार बरसा करें तो भी हम एक 'ओवरकोट'—'वाटरप्रूफ' कोट पहन सकते हैं, जिससे वे सब हमसे जरा दूर रहें और अपना असर न कर सकें। हमारे आसपासके लोग चाहें यही समझा करें कि यह दुःख हमपर पड़ चुका है परन्तु हम

उसे कोटके जाड़े पन जितने ही दूर देख पांयगे। ऐसा वाटरप्रूफ कोट कौनसा है? वह कहांसे लाया जायगा? तुम्हें जो ऐसे कोटकी जरूरत हो तो लक्षपूर्वक सुनों।

प्रातःकाल या मोड़े रातमें किसी एकान्त स्थानमें आओ अथवा तुम्हारे घरमें की एकान्त कोठरीमें बैठो; जहां किसी प्रकारकी आवाज खलल न डालती हो। वहां आसन लगाकर बैठो, जो आसन तुम्हें दुःखकर्ता न हो। शरीर स्थिर होने बाद मगज में से चिन्ताके बनावको धकेल निकाल देने के लिये तुम्हारी जिन्दगी में कोई भी सुखका, उत्साहका, हर्षका, आल्हादका समय आया हो उसे याद करो। उस आल्हादके बनावकी छवि तुम्हारी कल्पना शक्तिके आगे खड़ी करो। जैसे जैसे इस आल्हाद बनावकी छवि तुम्हारी कल्पना शक्तिके साम्हने खड़ी होगी वैसे वैसे इस समय की चिन्तायें तुम्हारे मस्तिष्क में से धीरे धीरे हटती जांयगी और थोड़े से समयमें तो तुम्हें आनन्दमय बन जाओगे।

कदाचित् चिन्ताका वेग फिर उथल पड़े तो फिर आनन्दमय बनावको स्मरण करो। जैसे विषयानन्दके समय भिखारी या कर्जदार या देशनिकाला पाये हुये पुरुषको भी आनन्दके सिवाय दूसरा ख्याल ही नहीं

आसकता और उस समय रात दिन उसके दिमागमें रमता हुआ निर्धनता मुसीबत या चिन्ताका दुःख अन्तर्धान हो जाता है; वैसे ही पूर्वको आल्हादक बनावको पीछा स्मरण शक्तिमें बुलालेदे—उसका चिन्तवन करनेसे तात्कालिक दुःख और चिन्ता का विस्मरण हो जायगा।

ऐसे चित्तस्वास्थ्य और मनःशान्ति प्राप्त होते ही उसका लाभ लेना चाहिए। तुम्हारी इस समय की कठिनता किस तरह दूर होगी इस बात पर शान्त चित्त से विचार करो। पहले जो उपाय तुम्हें कठिन मालूम होते थे अब वे सहज जान पड़ेंगे और तुम्हें जो कोई मार्ग सूझेगा वह सच्चा ही सूझेगा।

चित्त को शान्त करते हुए कदाचित् तुम्हारे दिन पर दिन चले जावेंगे परन्तु जो तुम हिम्मत के साथ लगे रहोगे तो जरूर चित्तशान्ति प्राप्त करोगे ही। इस चित्तशान्ति के समय में जो मार्ग तुम्हें सूझ पड़े उसे अवश्य ग्रहण करना, उस पर जरूर चलना। इतना जोर देकर कहने का कारण पूछते हो तो यही है कि दूसरे दिन जब तुम काम में लगोगे तब पहले सूझा हुआ विचार 'हवाई किल्लें बांधना, जैसा, अथवा कठिन, अथवा तुच्छ जान पड़ेगा, परन्तु तुम दृढ़ रहना, शान्त चित्त से जो कुछ सत्य देखा था

उसी पर चलना चिन्ता की परिछाईं से न घिबजाना खिंच जाना। चिन्ता शान्ति के थोड़े समय में जो कुछ देखने में आता है वह देव वाक्य तुल्य जानना। ऐसी एक भी घबराहट नहीं है जिस का उपाय विचारों को स्थिर कर शान्त बनाने से न मिल जाय; और ऐसा एक भी चाहने योग्य पदार्थ नहीं है जो आत्मिक शक्तिका ठीक ठीक उपयोग करने से न मिल सके।

जब तक अपने आत्मा में ऊंचे उतर कर वहां छिपे हुये शत्रुओं को तुम वश न कर सको तब तक तुम्हारे मस्तक में इन बातों का ख्याल आ ही नहीं सकता कि 'विचारबल, क्या चीज है उसका वाह्य पदार्थों के साथ क्या सम्बन्ध है। उस की जादूकी सी असर क्यों कर होती है और उस असर से जिन्दगी की घटनायें कैसे पलट जाती हैं इत्यादि।

तुम्हारे मस्तक में होता हुआ प्रत्येक विचार एक Force 'शक्ति, है। उस विचार के समान विचार करने वाले मनुष्यों की ओर वह दौड़ेगा और वहांसे पीछा तुम्हारी ओर आवेगा। यदि वह विचार उत्तम होगा तो तुम्हारा हित करेगा और कनिष्ठ होगा तो हानि। विचार बल की 'दे-ले, चला ही करती है। "स्वार्थमय और हानिकारक विचार एक

विनाशकारिणी शक्ति है ,, इसे खूब समझ रक्खो ये शक्तियां ऐसे ही दूसरे मनुष्यों को जा चौंटती हैं, उन्हें हानि पहुंचाती हैं और वहां से दूने जोर के साथ लौटकर तुम्हारे चित्त को भ्रष्ट करती हैं। इससे विपरीत शान्त, पवित्र, निःस्वार्थी, प्रसन्नमय विचार उत्तम देवदूत हैं जो अपने साथ तन्दुरुस्ती, सुख, शान्ति आबादी, आनन्द लेकर दुनियां में उतर आते हैं वे चिन्ता वगैरहको दूरकर जखमी हृदयको अमृतसे ठीक कर जवान बना देती है।

अच्छे विचार करो, अच्छी भावना भावो, इस से तुम्हारी बाह्य जिन्दगी भी सुखी होगी। आत्मिक शक्ति जैसे रास्ते पर लगाओगे उसी के मुआफिक तुम अपनी जिन्दगी को सुखी या दुखी कर सकोगे। तीर्थंकर पैगम्बर, सिद्ध, महापुरुष और पापियों की जिन्दगी में भेद है तो यही है कि पहिले कहेहुये महात्मा जब शक्ति को अपने आधीन रखते हैं तो दूसरे कहे हुये क्षुद्र प्राणी शक्तिके आधीन हो पड़ते हैं।

सच्चे सुख और पूर्ण शान्ति के लिये यदि कोई उपाय है तो यही है कि आत्मनिग्रह और आत्म शुद्धि। जहां घड़ी २ में स्नेह के उभरे, तिरस्कार की दाता, ईर्ष्या, अभिमान वगैरह विविध तरंगें उठें वहां चित्त की शान्ति कैसे रक्खी जा सकती है और म-

नुष्य को सुख कहांसे मिले ? इन क्षणिक तरंगों पर जय पावोगे तब सुखके थानमें सुनेरी तागा बुना कहा जायगा। तुम्हें एकान्त में बैठकर शान्ति का अनुभव लेनेका प्रेक्टीस करना चाहिये। इधर उधर बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र कर उन्हें एक इष्ट की ओर लगा देने का यही मार्ग है।

जैसे जैसे तुम अपने क्षणिक तरंग और विचारों पर जय पाते जाओगे वैसे ही वैसे तुम अपने में एक नई तरह की शक्ति होती हुई देख पाओगे। और उससे तुम्हारा चेहरा शान्त परन्तु दृढ़ बनेगा और निर्बलता की जगह तुम में ताकत आवेगी। तुम्हें जान पड़ेगा कि हरएक कामकी सफलता हमारी राह देख रही है। इस शक्ति के साथ ही तुम्हारे हृदय में एक भांति का प्रकाश होगा। जिस से तुम्हारे भ्रम, वहम, अज्ञानता दूर हो जायगी और आनन्द ही आनन्द हो जायगा। विचारशक्ति खिलेगी भविष्य में क्या होगा सो भी जान सकोगे। इस शक्ति के प्राप्त होने पर चाहे मनुष्य कुछ प्रयास न भी करे तो भी समर्थ पुरुषका लक्ष्य उस की ओर अपने आप खिंचेगा। लक्ष्मी यश वगैरः स्वयमेव खिंच आयगे।

मनुष्य का सुख दुःख उसी के हाथ में है। जिस मनुष्य को सुखी लोकोपकारी दृढ होना हो उसे चाहिये कि वह दुःख भरे विचार निराशा के विचार किसी के अहित करने के विचारों के फंदे में न पड़े और ऐसे विचारों को रोककर उत्तम विचारों को अपने मस्तिष्करूपी दिव्य महल में दाखिल करे। इसी तरह अच्छे या बुरे विचारों को अपने मस्तिष्क में जैसे इकट्ठा करोगे वैसे ही वैसे सुख या दुख कुदरती तौर पर आया ही करेगा।
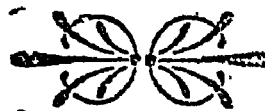
प्रकरण ५ वां।

तन्दुरुस्ती, विजय और शक्तिका रहस्य

हम जब छोटे बच्चे थे तब हम परी और देवियों की बहुत सी बातें सुना करते थे और उस से हमें आनन्द भी होता था। किसी भले आदमी को ये परियां और देवियां मदद देती थी और ठीक अणी के समय राक्षस, दुष्ट राजा और शत्रुओं से उसे बचाती थीं ऐसी बातों को हम गप्प मानते हैं परन्तु ये गप्प नहीं है। हम जो पवित्रता के राज्य में फिर बालक बन जांयगे तो उस गप्प को सर्वथा ही मानेंगे। ये परी और देवी पवित्र पुरुष के आस पास विचार के रूप में रहती है। विचार यह जीवित प्राणी है। और कुविचार दुख देने वाले प्राणी की भांति यहां वहां फिरता है। पवित्र शब्द यहां केवल नीतिमानके अर्थ में नहीं लिया गया परन्तु इस में निर्मल विचार उच्च आशय निःस्वार्थी प्रेम और निरभिमान इतने गुणों का भी समावेश समझना चाहिये। इन गुणों में रहने से अपने आस पास ऐसा अदृश्य वाता

वरण वनता है जिस की मधुरता और पूर्ण शक्ति का प्रभाव नजदीक में आने वाले प्राणी पर भी अवश्य पड़ता है।

जब सूर्य प्रकाशित होता है तब छाया या अंधकार दूर हो जाता है वैसे ही श्रद्धा और पवित्रता से रंगे हुये मनके फैलते हुए दृढता रूपी किरणों के सामने पाप की दुर्बल शक्तियां नाश हो जाती हैं।

जहां सच्ची श्रद्धा और निष्कलंक पवित्रता हृदय में जम जाती है वहां तन्दुरुस्ती है। वहां विजय है वहां सामर्थ्य अथवा शक्ति है। ऐसे हृदय में रोग द्वार या दुर्भाग्य प्रवेश कर नहीं सकते क्योंकि वहांपर इन के पालने के लिये कुछ खुराक नहीं है।

शारीरिक स्थिति का बहुत कुछ आधार मानसिक स्थिति पर है इस बात को धर्मशास्त्र मंजूर करते हैं इतना ही नहीं पाश्चिमात्य सायन्स भी इसका अनुमोदन करते हैं। जड़वादी ऐसा मानते आये हैं कि मनुष्य के मनका आधार उसके शरीर पर है परन्तु अब इस बात का असत्यपन लोगों के जान में आया है और अब यों मानने लगे हैं कि मन शरीर की अपेक्षा उच्च तत्व है और शरीर की स्थिति का बहुत कुछ आधार उस के विचारों पर निर्भर है।

मनुष्य को अजीर्ण हुआ है इस लिये वह चिन्तातुर होता है ऐसी जो मान्यता लोगों में फली थी

वह कम हो गई है उस की जगह अब लोग ऐसा मा-
नने लगे हैं कि मनुष्य को पहिले चिन्ता होती है
और उसके फल स्वरूप अजीर्ण होता है। सब रोगों
का आधार मानसिक स्थिति पर है इस बात का ज्ञान
समय आये सर्वमान्य हो जायगा ऐसी आशा रखना
कुछ अनुचित नहीं है।

इस जगत् में एक भी दुःख ऐसा नहीं है जिसका
मूल मन में न हो। जगत में जो दुःख, पाप, रोग, उ
दासीनता हम देखते हैं वे विश्वव्यवस्था के फलरूप
नहीं है वैसे ही किसी वस्तुके भीतर समाये हुए भी
नहीं हैं परन्तु वस्तुओं के परस्पर के संबंध के अज्ञान
से उत्पन्न हुए हैं।

परम्परा से ऐसी बात चली आती है कि पहले
भारतवर्ष में तत्वज्ञानियों का एक समुदाय रहता था
जो इतनी पवित्रता और सरलता से अपनी जिन्दगी
को व्यतीत करता था कि उस का प्रत्येक व्यक्ति १५०
१५० वर्ष तक जीता था और उस समय में बीमार
होना अक्षम्य अपराध समझा जाता था और बीमार
होने वाले को लोग तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे।
क्योंकि बीमार होना इस बात का सुबूत माना जाता
था कि उसने ठीक २ नियमों का पालन नहीं किया।
हम जितना जल्दी इस सत्य को स्वीकार और मानें

कि बीमारी ईश्वर की ओर का दंड नहीं है अथवा अविचारी विधाता की कसौटी नहीं है परन्तु अपने दुष्कृत्यों या पाप का परिणाम है उतना ही जल्दी हम आरोग्य या तन्दुरुस्ती के पास आगये हैं ऐसा मानो।

जो, रोगको बुलाते हैं, उन्हे ही रोग प्राप्त होता है। जिसका मन और शरीर रोग ग्रहण करने योग्य बनता है उसीके शरीरमें रोग दाखिल हो सकता है। परन्तु जिनका दृढ, शुद्ध और पवित्र मनोबल चारों ओर तन्दुरुस्ती और बलके विचारोंको फैलाता है उनके शरीरसे रोग दूर भगता है।

जो तुम्हारे चित्तमें क्रोध, चिंता, ईर्ष्या, लोभ अथवा और कोई ऐसी ही हलकी विचार श्रेणी घूमती हो और तुम सम्पूर्ण स्वास्थ्यकी आशा रखते हो, तो अवश्य तुम अशक्य बातकी आशा रखते हो। क्योंकि तुम क्षण क्षणमें अपने शरीरमें रोगके बीज बोते हो। जो वास्तवमें चतुर हैं वे ऐसी मनकी स्थितिका सर्वथा त्याग करते हैं। क्योंकि अस्वच्छ मोरीवाले और चक्कर लगानेवाले रोगके घरमें रहनेकी अपेक्षा भी ऐसी मनकी स्थितिमें रहना विशेष भयंकर है।

जो तुम चाहते हो कि सम्पूर्ण शारीरिक रोगसे बचें और पूरी २ तन्दुरुस्ती भोगें तो अपने मनको नियम में रक्खो, अपने विचारोंको परस्पर संगत ब-

भाओ, प्रसन्नता और प्रेमके विचारोंको मनमें दाखिल करो और अपनी रगरगमें शुभेच्छाका प्रवाह बहने दो; बस इतनेसे ही तुम्हें फिर दवाकी जुरूरत नहीं पड़ेगी। ईर्ष्या दूर करो, वहमको छोड़ो. चिन्ताको देशनिकाला दो, धिक्कारको तिलाञ्जलि दो, स्वार्थपरायणताको धकेलो, ऐसा होते ही इनके साथ ही अजीर्णता, गरमी, दुर्बलता, अंगभंगादि सब दुःख जड़मूलसे चले जायगे। जो तुम अपनी निर्बल और अधम बनाने वाली आदतोंको चिपटे रहो और तुम्हें बीमारी आकर चिपट जाय तो फिर किसीके सामने 'मैं बीमार हूं' ऐसी शिकायतें न करना। मनकी टेव और शारीरिक स्थितिका कितना ज्यादा सम्बन्ध है जो यह जानना हो तो नीचे लिखी हुई बात ध्यान देकर पढ़ो।

एक बीमार भयङ्कर बीमारीसे पीड़ित था! वैद्य, हकीम और डाक्टर कोई भी उसकी बीमारीको दूर न कर सके। मन्त्र यन्त्र और तन्त्रके प्रोफेसरोंसे कुछ भी न हुआ। नदी और कुण्डोंमें नहाय पर व्याधि न मिटी। एक दिन स्वप्नमें उसे एक साधु पुरुष देख पड़ा उसने उससे कहाः " भाई! क्या तू सब इलाज कर चुका "। तब साधुने कहा "हरे, मत चल मेरे साथ, मैं तुमें एक कुण्ड बताऊंगा, जिसमें स्नान करते ही तुझे आराम हो जायगा।" वह बीमार उस साधुके

पीछे पीछे गया। एक स्वच्छ जलका कुण्ड आया वहां दोनों ठहर गये। "बच्चा! गोता मार इस कुण्डमें; और होजा तन्दुरुस्त!" यों कहकर वह साधु अदृश्य हो गया। उस बीमारने वैसा ही किया और स्नान कर बाहर निकलते ही तन्दुरुस्त हो गया। इस वक्त उसकी आंख उस कुण्डपरके एक तखते पर पड़ी, जिसमें सुनहरी अक्षरोंमें चार हरफ खुदे हुए थेः—
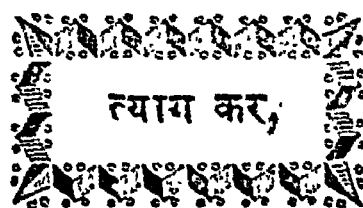
बीमार जग गया और उसके मस्तिष्कमें सारा स्वप्न चक्कर खाने लगा! इस स्वप्नके गुह्य अर्थ पर मनन करते हुए उसे जान पड़ा कि आहार-विहारमें और हरेक बातमें मैं हदको उलंघ जाता हूं. इसीसे मुझे बीमार होना पड़ा है। मेरे लिये "त्याग कर" यह सुनहरी अक्षर ठीक हैं। और इसी समयसे-इसी क्षणसे उसने स्वप्नकी सलाहको अमलमें लानेका निश्चय किया। उसी वक्तसे वह खाने-पीनेमें मितव्ययी हुआ। शरीर और आत्माकी शक्तियोंका खर्च करनेमें भी मितव्ययी हुआ। काम, क्रोध, लोभ, मानके विकारोंको भी छोड़-ने लगा। परिणाममें वह अपने मस्तिष्कमें शान्तिका अनुभव करने लगा*। और इस आन्तरिक शान्तिकी परिछांई बाहर पड़नेसे शरीर भी शान्त निरोग हो गया।

कितने ही तुम मनुष्य विषयतृप्तिमें कुत्तेके समान खाने और पीनेमें गीधके समान हो कर क्रोधादि आवेशोंके सहजमें वश होते हैं और असाध्य बीमा-रियां पैदा कर लेते हैं और फिर चिल्लाते हैं कि "अ-रेरे कामके बोझसे हम तो मर गये!" या "कर्मने हमको मार डाला!" ऐसे आत्मघातियोंके लिये उस बीमारके स्वप्नके शब्द "त्याग कर" अमूल्य सलाह है। मनुष्य स्वयं दर्द पैदा करते हैं और स्वयं जैसे

मिटा सकते हैं वैसे दूसरा कोई नहीं मिटा सकता।

जो हम अच्छी तरह खोज करें तो हमें मालूम होगा कि शरीरकी निर्बलता यह शक्तिका मूर्खताके साथ उपयोग करनेका परिणाम है। जो तुम सच्ची तन्दुरुस्ती पाना चाहते हो तो निश्चिंत होकर काम करना सीखो। चिन्तातुर होना, उद्वेग बना रखना, अथवा फोकट बातोंमें चित्तको दलिगीर बनाना ही शारीरिक निर्बलताका मुख्य कारण है। शारीरिक और मानसिक प्रत्येक काम तन्दुरुस्ती देनेवाला और उपयोगी है। जो मनुष्य चिन्ता और उद्वेगको दूर कर दृढता और धैर्यसे काम करते हैं और काम करते समय उस कामके सिवायके दूसरे सब विचारोंको मनसे दूर रखते हैं वे, चिन्ता और उद्योगसे काम करने वालोंकी अपेक्षा बहुत अच्छा काम करते हैं। इतना ही नहीं वे अपने स्वास्थ्यको भी कायम रख सकते हैं। जल्दबाज़ और चिन्तातुर मनुष्यको यह (स्वास्थ्यका) लाभ कभी नहीं मिल सकता।

जहां स्वास्थ्य है वहां विजय है। विचारके वातावरणमें ये दोनों बंधे हुए हैं। जैसे मनकी उत्तमतासे शारीरिक तन्दुरुस्ती होती है वैसे ही मनोबलसे अपने मनचीते कामोंकी सिद्धि भी होती है। पहले अपने विचारोंको सुव्यवस्थित करना सीखो। इससे

तुम्हारा जीवनव्यवहार भी सुव्यवस्थित हो जायगा। जो तुम अपने मनोविकार और पक्षपातके विचाररूपी जल तरङ्गों पर तेल डालते होगे तो दुःख और दुर्भाग्यका तूफान चाहे जैसा भारी क्यों न हो तुम्हारी जीवन—नौकाको कुछ हानि न पहुंचा सकेगा। और यदि तुममें आनन्द और अडिग श्रद्धा होगी और इस संसार—समुद्रमें अपनी जीवन—नौकाको आनन्द और श्रद्धासे चलाते रहोगे तो तुम्हारा मार्ग सर्वथा निर्भय रहेगा और बहुतसे दुःखोंको तो सहजमें ही दूर कर सकोगे। श्रद्धाबलसे प्रत्येक काम सिद्ध होता है। जो अपनी आत्मामें तुम्हें सम्पूर्ण श्रद्धा हो, जो प्रकृतिके महान् व अचल नियममें तुम्हें सम्पूर्ण श्रद्धा हो, जो कार्य करनेकी शक्तिमें तुम्हें श्रद्धा हो यह श्रद्धा ही एक ऐसा पहाड़ है जिसपर खड़ा होकर तुम प्रत्येक कार्यमें विजय प्राप्त कर सकोगे और भयंकर जीवन कलहमें अपना गुजारा आरामसे कर सकोगे।

यह श्रद्धा, यह विश्वास, यह प्रतीतिकी व्याख्या यही है कि, प्रत्येक स्थितिमें मनकी उत्तम भावनाओं अनुसार वर्तन रखना, आत्मामें सम्पूर्ण विश्वास रखना, अन्तःकरण पर श्रद्धा रखना, निश्चिंत व निर्भय मनसे अपना कार्य करना, अपने प्रत्येक कार्य व विचारका भविष्यमें यथायोग्य फल अवश्य ही मिलेगा

ऐसा विश्वास रखना, प्रकृतिके क़ानून अचल व सनातन हैं जिसमें कभी लेश भी हानि होनेवाली नहीं हैं ऐसा ज्ञान प्राप्त करना, जिस चीज पर तुम्हारा हक्क़है है उसमेंसे कौड़ी जितना भी कमी करनेकी किसीकी ताकत नहीं है ऐसा अनुभव प्राप्त करना—ये सबका नाम 'श्रद्धा' है।

ऐसी श्रद्धाके बलसे हरेक संशय दूर हो जाता है, दुःखके पहाड़ उलांघे जा सकते हैं और श्रद्धालु आत्मा अपनी निरंतर उन्नति ही साधता रहता है।

प्रिय वाचक! प्रत्येक वस्तुसे मूल्यवान अमूल्य श्रद्धाको पानेका विशेष यत्न करना क्योंकि श्रद्धा सुख, विजय, शान्ति, सत्ता, और जिससे जीवन उन्नत हो ऐसी प्रत्येक वस्तुके पा जानेका उत्तमसे उत्तम यंत्र है।

जो तुम्ह ऐसी श्रद्धापर अपने विजयका मकान चुनोगे तो सचमुच तुम नित्य पदार्थोंसे नित्यत्वकी नीवपर पाया चुनोगे और जो मकान तुम बनाओगे वह कभी नाश न होगा; क्योंकि सम्पूर्ण धन दौलत जो अखीरमें नाशवान् है उससे ज्यादा स्थायी और अचल वस्तु प्राप्त कर सकोगे। तुम चाहे दुःखकी खाई में पड़े हो चाहे आनन्दके पर्वतपर चढ़े हो परन्तु इस श्रद्धा परका अपना अधिकार कभी न खोना। तुम्हारा मानो तुम्हारा ही हो इस तरह इस श्रद्धारूपी पलंग

पर विश्राम करना और उसके अचल और नित्य पाये पर अपने पैरोंको जमाये रखना। जो तुम में यह श्रद्धा अविचल होगी तो ऐसा आध्यात्मिक बल प्राप्त होगा कि जिससे तुम आते हुए दुःखके बद्दलोंको खिलोने की भांति चूरचूर कर डालोगे और दुनियाकी मौज-शोखकी चीजें इकट्ठी करनेको लगे हुए मनुष्य जानसके या कल्पना कर सकें उसकी अपेक्षा विशेष उच्च विजय तुम्हें प्राप्त कर सकोगे।

एक महापुरुषने कहा है कि:—

" If ye have faith and doubt not, ye Sha l not do only this...but if ye shall say unto this mountain, be thou removed and be thou cast into the Sea, it shall be done.

"जो तुम में श्रद्धा होगी और संदेह न होगा तो तुम ऊपर कहा हुआ ही न कर सकोगे बल्कि जो तुम पर्वतसे कहोगे कि यहांसे हट और दरियामें गिर तो वैसा भी हो जायगा"।

इस जगत्में देहधारी जीतेजागते ऐसे स्त्री पुरुष निवास करते हैं कि जिन्होंने इस प्रकारकी श्रद्धाका अनुभव किया है और प्रतिदिन अपना जीवन व्यवहार वैसी ही श्रद्धासे चलाते हैं। उन्होंने श्रद्धाको अच्छी तरह कसोटी पर कसकर कीर्ति और शांति

प्राप्त की है। उन्होंने जब जब आशा की है तभी तब दुःख, उदासीनता, मानसिक चिंता और शारीरिक व्याधिके पहाड़के पहाड़ उनके साम्हने उड़कर विस्मृतिके समुद्रमें डूब गये हैं।

जो तुम में यह श्रद्धा पूरी होगी तो फिर तुम्हें यह चिन्ता न करनी पड़ेगी कि हमारा काम सफल होगा या विफल। और ऐसा होनेपर भी विजय प्राप्त कर सकोगे। तुम्हें अपने कामके परिणामके बारेमें जरा भी चित्तको उचाटना न चाहिये परन्तु आनन्द और शान्तिके साथ काम करते जाना चाहिये क्योंकि सद्विचार और सत्प्रयत्नके परिणाम रूपमें तुम्हें अवश्य शुभ फल मिले होगा। यह ज्ञान तुम्हें उस श्रद्धासे हो जायगा।

यह लेखक एक ऐसी स्त्रीको भली भांति पहचानता है कि जो अपने प्रत्येक काममें सफलमनोरथ हुई है। एक समय उसके एक मित्रने उससे कहाः "तुम कैसी भाग्यशालिनी हो। ज्यों ही तुम किसी वस्तु की इच्छा करती हो त्यों ही वह तुम्हें मिल जाती है," ऊपर ऊपरसे देखनेवालेको तो यही मालूम होगा कि ऐसे संयोग थे, परन्तु वास्तवमें जो शुभ वस्तुएं उसे मिलतीथी उसका सच्चा कारण उसकी आनन्दमयी प्रकृति और शुभ भाव थे, जिन्हें वह प्रत्य क्षणमें खिं-

लाती जाती थी और पूर्णता पर पहुंचाती थी। अन्यथा केवल इच्छा करनेसे निराशाके सिवाय और क्या मिलना था ?।

उत्तम रीतिसे जीवन व्यतीत करना यही वस्तु प्राप्त करनेका उत्तम साधन है। मूर्ख मनुष्य इच्छा करते हैं और वस्तु नहीं मिलती तब बड़बड़ाते हैं, परन्तु कुछ मनुष्य पहले काम करते हैं और उसके फलतक मार्गकी प्रतीक्षा करते हैं। उस स्त्रीने भी काम किया था—भीतरसे और बाहरसे काम किया था, परन्तु मुख्यकर भीतरसे मन और आत्माको सुधारनेका यत्न किया था। आत्माके अदृश्य हाथोंसे उसने श्रद्धा, आनन्द, भक्ति और प्रेमरूपी अमूल्य रत्नोंसे एक सुन्दर मन्दिर बनाया था, जिस मन्दिरका प्रकाश चारों ओर आनंदके किरण फैलाता था। उसकी आंखमें आनन्द झलक रहा था, उसके चहरेपर वह प्रकाशित हो रहा था, उसकी आवाजमें व्याप्त होरहा था। जो जो मनुष्य उस स्त्रीके संबंधमें आते थे उन सबको उस सर्वव्यापी आनन्दकी छायाका अनुभव होताथा।

जैसा इस स्त्रीके संबंध में हुआ वैसा तुम्हारे संबंधमें भी हो सकता है। तुम्हारा विजय या तुम्हारा प्रभाव—या तुम्हारा संपूर्ण जीवन तुम्हारेही हाथमें है तुम्हारे पर ही आधार रखते हैं। तुम्हारा भविष्य

कैसा होगा, इसका आधार तुम्हारे विचार कैसे हैं इस पर है। जो तुम प्रेमभरे, निष्कलंक और सुखमय विचारोंको अपने चारों ओर फैलाओगे तो तुम्हारे हाथमें सब उत्तम वस्तुएँ आवेंगी और जहां तहां शान्तिका अनुभव करोगे। और जो तुम द्वेषयुक्त अपवित्र और दुःखमय विचारोंका प्रवाह अपने हृदयमेंसे बहाओगे तो चारों ओरके लोगोंका तुम्हें शाप सुनाई पड़ेगा और तुम्हारे दिमागमें बेचैनी अपना राज्य चलावेगी। तुम्हारा भाग्य कैसा ही क्यों न हो परन्तु उसके बनाने वाले तुम्हीं हो। तुम्हारा भविष्य सुधरेगा बिगड़ेगा इसका आधार क्षणक्षणमें निकलते हुए तुम अपने हृदयको विशाल निःस्वार्थी और प्रेमभरा बना दोगे तो कदाचित तुम्हें धन कम भी प्राप्त हो परन्तु तुम्हारा प्रभाव और विजय सचमुच महान और चिरस्थायी होंगे; और ऐसा होने की अपेक्षा यदि तुम स्वार्थके विचारोंमें डूब जाओगे तो कदाचित् तुम कोटपति होजाओ परन्तु तुम्हारा प्रभाव और विजय तुच्छ होजायगे।

जो यह बात तुम्हारी समझमें सत्य जान पड़ती हो तो निःस्वार्थताको अपने हृदयमें खिलाओ और उसीके साथ अपने हृदयमें श्रद्धा, पवित्रता और एकाग्रताको स्थान दो। इस तरह तुम पूर्ण तन्दुरुस्तीके

बीज बोओगे तो उसके साथ ही चिरस्थायी विजय और अनन्त सामर्थ्यके बीज भी बोये जांयगे।

तुम्हें यदि अपनी वर्तमान स्थिति न भाती हो और तुम्हारे करनेके काममें जी न लगता हो तो भी बराबर ध्यान पूर्वक अपना कर्त्तव्य पालन करते जाओ और उसके साथ मनमें 'श्रद्धा' रक्खो कि थोड़े ही समयमें तुम्हें अच्छी स्थिति और अच्छे संयोग अवश्य प्राप्त होंगे।

नये उपज आते हुए संयोगोंकी राह हमेशा देखते रहो। जिससे, जब योग्य अवसर आजाय और नवीन मार्ग जान पड़े तब तुम उसे जल्दी ग्रहण कर सको और सावधान हो दीर्घदर्शीपनसे तुम उस काममें मन लगाकर पूर्ण विजय पा सको।

तुम्हारे करनेका कोई भी काम क्यों न हो उसीमें अपने मनको एकाग्र करो, तुममें जितना मनोबल हो उसीमें लगा दो। जो तुम छोटे छोटे कामोंको अच्छी तरह कर सकोगे तो बड़े २ काम करनेके तुम अपने आप योग्य होते जाओगे। धीरे धीरे और दृढ़तासे चढ़नेका अभ्यास करोगे तो तुम कभी नहीं गिरोगे। और सच्ची सामर्थ्यका रहस्य इसीमें है। निरंतर अभ्यास कर अपने मनोबलको एकत्र करना और ठीक समयपर उसे एक ही बातपर लगादेना सीखो। मूर्ख

मनुष्य अपनी मानसिक या आत्मिक सम्पूर्ण शक्तियें जो वद्धुताईमें, निकम्मे गप्पोंमें या स्वार्थमयी दलीलों में खर्च करडालते हैं, इतना ही नहीं बल्कि हद बाहर विषय सुखमें रचेपचे रहकर अपनी शारीरिक शक्तियोंका भी नाश करते हैं।

जो महाशक्ति पानेकी तुम्हारी इच्छा ही हो तो मौन, गंभीरता और धैर्य धारण करनेकी सबसे ज्यादा जरूरत है। अकेले अडिग खड़े रहना तुम्हें सीखना चाहिये। सब बलोंका आधार स्थिरतापर अडिगपने पर है। पर्वतादिकी ओर दृष्टि करो तुम्हारे समझमें आयगा कि उनको जिस तरहकी भव्य अचल शक्तिकी दृढ़ता है। गिरती हुई रेती, झुकती हुई शाखा और पवनसे हिलती हुई वरू को भी देखो; तुम्हें फौरन उनकी निर्बलता जान पड़ेगी। ये सब चीजें चंचल हैं। इनमें सहन करनेकी शक्ति नहीं है। और जब ये अपनीसी वस्तुओंसे पृथक् हो जाती हैं बस वे किसी कामकी नहीं रहती। जिस समय अपने सब जाति भाइयोंको विकार और लगन (Feelings) की असर हो उस समय भी जो शांत और स्थिर रह सके वही सच्ची सामर्थ्य वाला पुरुष है।

जो मनुष्य अपने आपको वशमें रखना सीखा है वही दूसरोंको वश रख सकता है अथवा आज्ञा दे स-

कता है। जो मनुष्य अस्थिर मनके हैं, डरपोक हैं या चंचल हैं मनुष्योंको चाहिये कि दूसरोंका आश्रय लें, नहीं तो वे निराधार होकर अधम स्थितिमें आ पड़ेंगे।

परन्तु जो शान्त हैं, निडर हैं, और विचारशाली हैं उनके लिये जंगल उद्यान पर्वतका शिखर आदि एकांत स्थान उत्तम है। ऐसे स्थल उनकी वर्तमान शक्तिमें उन्नति करेंगे। और विकाररूपी चक्र या भंवर से मनुष्य जातिका बड़ा भाग संसार-समुद्रमें गोते खा रहा है, उन विकारों पर जय पाकर वह मनुष्य सफलता पूर्वक अपने काममें आगे बढ़ेगा।

हलकी वासना यह 'शक्ति' नहीं है। वह तो शक्तिका दुरुपयोग है। अथवा शक्तिको तोड़ मरोड़ डालनेका साधन है। वासनायें भयंकर तूफान है जो बड़े जोश और जोरसे चट्टानसे अड़ता है परन्तु शक्ति है वह तो चट्टानकी भांति अचल है और सब तरह के तूफानोंमें चट्टानकी तरह एकसा अडिग रह सकती है।

ल्यूथर नामका एक महान धर्मसुधारक हो गया है। उसके मित्रोंको इस बातकी शंका थी कि जो ल्यूथर वर्म्स नगरमें जाय तो कदाचित् ही जिन्दा लौटे। इस लिये वे उसे समझाने लगे। परन्तु सच्ची आत्म शक्तिको प्रकट करता हुआ धर्मसुधारक बोल उठा कः—अपनी इस छपरी पर जितने कवेलू हैं उतने भी

राक्षस जो उस गांवमें रहते हों तो भी मैं वहां अव-श्य जाऊंगा ?

जिस समय वेंजामिन डीभ्फरेलाई पहले पहल पार्लामेंटमें व्याख्यान देनेको खड़ा हुआ तब उससे ठीक ठीक बोला न गया, इससे सारी सभा हंसने लगी, उस समय उसने अपने धैर्यको काममें लाकर बोल उठा कि "एक दिन ऐसा भी आयगा तुम मेरा व्याख्यान सुननेमें अपना गौरव समझोगे,,। यह उसके शब्द इस बातकी सूचना देते हैं कि उसका अपनी आत्मिक शक्तिमें कितना विश्वास था।

एक नवयुवक प्रायः अपने काममें निष्फल होता था। जहां तहां उसे नाकामयाबी ही होती थी। उसे उसके मित्रोंने कहा कि अब प्रयत्न करना छोड़ दो, तब उसने कहा कि "ऐसा समय अब दूर नहीं है जब कि तुम भाग्य और सम्पत्ति देखकर आश्चर्य पाओगे। यह शब्द कह कर उसने सिद्ध किया था कि उसके हृदयमें एक ऐसी अपूर्व और अजित शक्ति है कि जिसके बलसे वह अनेक संकटोंके पार हो गया है और विजय पानेके योग्य हो गया है।

जो तुममें ऐसा बल—ऐसी शक्ति न हो तो कुछ चिन्ताकी बात नहीं। अभ्यास करो तो तुम भी उस शक्तिको पा सकोगे। और ज्ञान पानेका आरम्भ कर-

ना यह शक्ति प्राप्त करनेका प्रारम्भ करनेके बराबर है। पहले तो हलकी और तुच्छ बातोंसे तुम गुलाम बन रहे हो, उन पर मालिकी प्राप्त करनेका यत्न करो। बेकाम खडखड हंसना, किसीकी निन्दा करना या गप्पें मारना, दूसरों को हंसाने के लिये ही किसी की ठट्ठा मसखरी करना इन सब बातोंका पहले त्याग करो क्योंकि तुम्हारा कीमती वक्त, बहुतसी ऐसी तुच्छ बातों में ही चला जाता है। इसी सबबसे ही बड़ी चतुराई से काम ले और मनुष्य स्वभावका भली भांति अनुभव पाकर सेंट पालने इफीशियन लोगों को निकम्मे गप्पें मारनेके तथा हंसी मसखरी करनेके विरुद्ध सख्त उपदेश किया था। कारण कि ऐसी बातोमें समय खोना आत्मिक शक्ति और जीवन नाश करनेके बराबर है। ऐसी ऐसी तुच्छसी बातोंपर जब तुम पहले ही जय पाओगे अर्थात् इन २ बातोंका कुछ भी प्रभाव तुम्हारे हृदयपर न होगा तभी तुम्हें सच्ची शक्ति क्या है इसका कुछ आभास पहले पहल होगा। इसके बाद तुम उन २ प्रबल विकार और वासनाओंके साथ युद्ध करने को भी समर्थ होंगे जो तुम्हारी आत्माको बंधनमें रखते हैं और तुम्हारी उन्नतिमें विघ्न पहुंचाते हैं। ऐसा होने पर तुम्हारी समझमें अपने आप आयगा कि अब क्या करना चाहिये।

सब बातोंमें योग्य और आवश्यक मुद्दा यह है कि एक ही आशय रक्खो। एकही योग्य और उच्च धारणा रक्खो और तुम्हारा सम्पूर्ण मनोबल उसके पीछे लगादो। तुम चाहे जैसे संयोगोंमें आ पड़ो परन्तु नित्यनियमको न छोड़ो। संस्कृतमें लिखा है कि 'संशयात्मा विनश्यति' जिसके मनमें यह करना कि वह मनुष्य अपने काममें सफल नहीं हो सकता।

सीखनेको तैयार रहो, प्राप्तिकी जल्दी न करो। अपने कामको अच्छी तरह समझो और फिर अपने पूरे सामर्थ्यसे उसे करो। जैसे जैसे तुम अपने अन्तरात्माके कहनेके अनुकूल अन्तःकरणकी आज्ञानुसार चलते रहोगे वैसे ही वैसे तुम्हें विजय पर विजय मिलती ही जायगी तुम ऊंचेसे ऊंचे स्थानपर चढ़ते ही जाओगे—तुम्हारी दृष्टि बढ़ती ही जायगी और तुम्हें जीवनका हेतु और सौंदर्य साफ तौरपर देख पड़ेंगे। अपने 'आप' को पवित्र और शुद्ध रखनेसे तुम अवश्य तन्दुरुस्त बनोगे।

जो तुम्हें अपनी जातमें श्रद्धा होगी तो अवश्य तुम्हें अपने काममें विजय मिलेगी। जो तुम अपने आपको वशमें रख सकोगे तो सब सत्ता अपने आप तुम्हें आ मिलेगी। तुम्हारे प्रत्येक काममें तुम्हें सिद्धि मिलेगी क्योंकि तुम कोई भिन्न व्यक्ति हो इस रीति

से काम नहीं करते और न तुम स्वार्थके दास हो, बल्कि जगतके भलेके लिये काम करने वाली शक्तियोंके साथ एक होकर तुम काम करते हो। इनसे तुम्हारा जीवन सार्वजनिक कामोंके लिये काममें आता है। इस मार्गपर चलते हुए जो तन्दुरुस्ती तुम्हें मिलेगी वह सदा तुम्हारे ही पास रहेगी। तुम्हे जो विजय मिलेगी वह मनुष्योंकी गिनतीके परे पारकी होगी, उसका कभी लोप न होगा। तुम्हारी शक्ति और प्रभाव ज्यों ज्यों काल बीतेगा बढ़तेंही जांयगे। कारण कि इस जगत्को धारण करने वाले जो नित्य तत्व हैं उसीके एक भागरूप तुम भी हो।

अब तुम समझ गये होगे कि तन्दुरुस्तीका रहस्य पवित्र हृदय और सुव्यवस्थित मन है। विजयका रहस्य अड्ग श्रद्धा और अच्छी रीतिसे योजना किया हुआ कार्य है। और इच्छारूपी काली घोड़ीको परिपूर्ण विचार–शक्तिसे वशमें रखना ही प्रभाव (शक्ति) का रहस्य है।

प्रकरण ६ ठा

परम सुख अथवा आनन्द कहां है ?
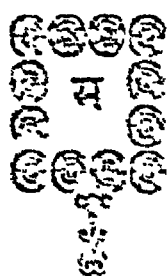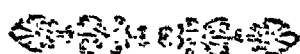
मनुष्य सुख पानेके लिये बड़े आतुर जान पड़ते हैं. परन्तु जितनी यह आतुरता है उतनी ही जगतमें सुखकी कमी जान पड़ती है ! पैसे मिलनेसे स्थायी सुख मिलेगा इस विचारसे बहुतसे मनुष्य धनके लिये फांफां मारते हैं और बहुतसे धनवान जिनकी अनेक वासना पूर्ण हैं वे ज्यादा धन होनेसे दुःख पाते हैं और खाट पर पड़े पड़े कहते हैं कि "हाय ! हमसे कुछ काम नहीं बनता" और यदि सुख और प्रसन्नताका विचार करें तो उन बहुतसे गरीब मनुष्योंसे इनकी कुछ अच्छी हालत नहीं है। इस बातको हम सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो यह नतीजा आयगा कि सुखका आधार कुछ बाह्य वस्तुओंकी प्राप्ति पर नहीं है और न दुःखका आधार उन वस्तुओंके न मिलने पर है।

जो ऐसा न होता तो सब गरीब दुःखी होते और सब धनवान सुखी। परन्तु जगतकी ओर देखनेसे कुछ और

ही भांतिका दृश्य दिखाई देता है। इस लेखकने ऐसे भी मनुष्य देखे हैं जो खूब धन दौलत वाले होने पर भी दुखीसे दुखी थे और ऐसे भी मनुष्य देखें हैं जो सुखीसे सुखी हैं और अपनी आजीविका जितना भी धन कठिनतासे कमाते हैं। बहुतसे मनुष्य जिन्होंने अपना सारा जीवन धन इकट्ठा करनेमें ही बिताया, वे स्पष्ट रीतिसे स्वीकार करते हैं कि धन कमाकर उसका उपयोग स्वार्थमें ही करनेसे जिन्दगी नीरस हो जाती है और जब वे गरीब थे तब विशेष थे।

तब सुख क्या है? वह कैसे मिल सकता है? क्या वह स्वप्न या मिथ्या भ्रम ही है? या दुःख शाश्वत है?

बारिक दृष्टिसे विचार करने पर हम ऐसे निश्चय पर आ सकते हैं कि जिन्होंने सद्ज्ञानके मार्गमें पैर रक्खा है उन्हें छोड़कर दूसरे सब मनुष्य ऐसा मानते हैं कि अपनी इच्छाओंको तृप्त करनेका नाम ही सुख है। अज्ञानसे उत्पन्न हुई और स्वार्थके विचारोंसे बल पाई हुई ऐसी मान्यता ही दुःखका सच्चा कारण है। 'इच्छा' शब्द यहां पर 'हलकी, वासना, के अर्थमें ही नहीं व्यवहृत हुआ परन्तु उसकी सत्ता उच्च प्रदेशोंमें भी है, सभ्य कहाते हुए लोकोंपर भी ज्यादा बलवती ज्यादा शक्ति वाली और ज्यादा नाश करने वाली 'इच्छा' या वासना राज्य करती है और आत्माको

पवित्रता और सुन्दरता (जो सुखका कारण है) को बिगाड़ देती है।

बहुतसे मनुष्य इस बातको तो स्वीकार करते हैं कि इस जगतमें दुःखका मूल कारण स्वार्थ है। परन्तु इसके साथ ही ऐसा माननेकी भूल भी करते हैं कि इस दुःखका कारण अपनी नहीं परन्तु परायेकी स्वार्थ दृष्टि है। जब हृदयसे इस बातको मान लोगे कि दुःख का सच्चा कारण अपनी ही स्वार्थ दृष्टि है तब तुम अवश्य स्वर्गके द्वारमें प्रवेश करने योग्य बन जाओगे।

परन्तु जबतक तुम ऐसा मानोगे कि परायेकी स्वार्थदृष्टि तुम्हारे आनन्दका नाश करने वाली है तब तक तुम स्वयं ही अपने आत्माको कैदी बनाते हो— बन्धनमें डालते हो।

सुख पूर्ण सतोषकी आंतरदशा है। यह सुख आनन्द रूप है; और आनन्दमें किसी तरहकी इच्छा तृप्त करनेसे जो संतोष मिलता है वह बहुत ही थोड़े समयके लिये होता है, मायावी होता है और उसी इच्छाको तृप्त करनेकी बार बार लालसा हृदयमें जागृत होती है। इच्छा समुद्र जैसी है जैसे इतनी नदियोंके मिल जानेसे भी समुद्र तृप्ति नहीं पाता वैसे ही अनेक पदार्थोंके मिलने पर भी इच्छाकी तृप्ति नहीं होती। इच्छा अपने सेवकोंके पाससे अ-

धिक सेवाकी आशा करती है। जबतक शारीरिक और मानसिक दुःख मनुष्यके माथे न आ पड़े तबतक वह इच्छाओंको तृप्त करनेमें लगा रहता है परन्तु फिर वह दुःखाग्निमें फिरता है कि जिससे उसे अनुभव होता है और वह वासनाओंके फंदेसे छूटता है तथा पवित्र होता है।

इच्छा नरकवासियोंका धन है और सब दुख उसमें समाये हुए हैं। इच्छाओं का त्याग करना वह स्वर्ग का साक्षात्कार करने सरीखा है। और स्वर्ग में सब प्रकार का आनन्द निःस्पृही मनुष्य का मार्ग देख ही रहा है। एक कविने लिखा है कि:—

I sent my soul through the invisible,
Some letter of that afterlife to Spell;
And bp and by my soul returhed to me
And whispered 'I myself am heaven and hell'

मैंने लोक लोकके भीतर अपने आत्मा को भेजा
"मरण बादकी स्थितिके अक्षर जान २ जल्दी आजा,,
धीरे धीरे मेरा आत्मा लौटा बोला धीरज से
'मैंही स्वयं स्वर्ग हूं, हूं त्यों स्वयं नर्कभी हैं मुझसे।
स्वर्ग और नरक ये दोनों मन की स्थिति हैं।

स्वार्थमयी तृष्णाओं को संतुष्ट करने में तुम रचे रहो, तो जरूर नरक में डूबोगे और अहंपन के विचारों को

दूरकर बिल्कुल निःस्वार्थता और जितेन्द्रियता खो-खोगे तो यहां पर रहते हुए भी स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करोगे। अहंता अंधी है अविचारी है ज्ञान रहित है और दुःखका परम कारण है। शुद्ध विचार शक्ति निष्पक्षपाती निर्णय और सद्ज्ञान इनका चैतन्यके साथ सम्बन्ध है। इस दिव्य चैतन्यका जितना तुम अनुभव करोगे उतना ही तुम्हें ज्ञान होगा कि सच्चा सुख क्या है?।

जबतक स्वार्थदृष्टिसे तुम अपने लिये सुख या सुख के पदार्थोंको ढूंढोगे तबतक सच्चा सुख तुमसे दूर भगेगा और दुःख दुर्भाग्य के बीज उगेंगे। दूसरोंका भला करने में—परोपकार करने में जितना तुम 'अहंता, का त्याग कर सकते हो उतने ही तुम सच्चा सुख पाने के योग्य, बन सकते हो और आनन्दके भोक्ता होसकते हो।

एक कवि कहता है कि:—

It is in loving not in being loved
The heart is blessed.
It is in giving, not in seeking gifts,
We find our quest.

" दूसरा हमें चाहे इससे नहीं परन्तु हम दूसरेको चाहे इससे हृदय प्रसन्न होता है। दान लेनेसें नहीं, हमारी आन्तरिक खोजका अन्त दान देनेसें होता है।,,

Whatever be thy craving or thy need,
That do you give;
So shall thy soul be fed, and thou indeed
shalt truly live.

" जिस वस्तुको तू चाहता हो उस वस्तुको तू दे। इससे तेरे आत्माको खुराक मिलेगी और तू सच्चे तौर पर जिन्दा रहा कहा जायगा।"

स्वार्थका विचार करनेसे तुम दुःख आ स्वागत करते हो। स्वार्थका विचार छोड़ो, इससे तुम शांतिको बुलाओगे। स्वार्थके विचार कर तुम सुखको खोते हो, इतना ही नहीं परन्तु जिसे हम सुखका मूल मानते हैं वह भी चला जाता है। जिसे जीभ की चाट लग गई हो ऐसा मनुष्य नये नये स्वादिष्ट खुराक के लिये तरसता है, मरी हुई भूखको चितानेके लिये अनेक रोचक पदार्थ खाता है, परन्तु थोड़े ही दिन में अजीर्ण हो कर उसे अनेक रोग आ घेरते हैं। और इससे वह जितना पहिले खा सकता था उतना भी नहीं खा सकता। परन्तु जिसने अपनी जीभ को वशमें किया है उसे स्वादिष्ट पदार्थोंकी कुछ परवा नहीं होती, वह सादा खुराकमें ही परम सुख मानता है। स्वार्थी मनुष्य सोचते हैं कि इच्छाओंकी तृप्तिमें सुखके देवता की मूर्ति है, परन्तु ज्यों ही वे उस मूर्त्ति को पकड़ने

को जाते हैं त्यों ही उनके हाथमें दुःखका हाडपिंजर आता है! धर्म शास्त्र ठीक ही कहते हैं कि " जो मनुष्य स्वार्थके कारण अपने ही विचार में मग्न रहते हैं उनका जीवन व्यर्थ जाता है और जो परोपकारके आशयसे अपनेको भूल जाते हैं वे परमार्थका साधन करते हैं। अर्थात् वे परम आनन्दके भोक्ता हैं ,,।

जब तुम स्वार्थपरायणतासे किसी भी वस्तुकी इच्छा करना छोड़ दोग और स्वार्थ त्याग वृत्ति ग्रहण करोगे तब तुम शाश्वत सुख के ग्रहण करने योग्य बनोगे। जिस क्षणिक वस्तुको तुम चाहते हो (जो कभी न कभी तुम्हारे हाथ से अवश्य निकल जायगी) उसे सर्वथा त्याग कर देनेको जो तुम प्रसन्नतासे तैयार हो तो तुम्हें ज्ञात होगा कि जो तुम्हें हानिकारक और दुःखरूप जान पड़ता था वह एक बड़ा भारी लाभ ही था मिलने के लिये देना इस से विशेष भ्रम अथवा दुःखका कारण संसार में कोई नहीं है। परन्तु हमें वस्तु का त्याग करने-के लिये दुःख सहन करने के लिये तैयार रहना चाहिये। यही शाश्वत जीवन का अनुभव होने का उत्तम मार्ग है। जो वस्तु स्वाभाविक तौर से क्षणिक है उन पर चित्त लगाकर सुख पाने की आशा करना व्यर्थ है। सुख तो नित्य स्थायी वस्तु का मनन करने से प्राप्त हो सकता है। इस से क्षणिक वस्तुओं

पर राग रखना और उन के लिये तरसना छोड़ देना चाहिये। ऐसा करने से तुम अवश्य शाश्वत वस्तु का ज्ञान पा सकोगे। जैसे जैसे तुम स्वार्थ को छोड़ते जाओगे पवित्रता निःस्वार्थ और मैत्री भावनाके सद्गुणों को खिलाते जाओगे वैसे ही वैसे तुम आत्मप्रकाश पानेमें समर्थ होगे। और उसीके साथ तुम्हें ऐसा आनन्द प्राप्त होगा जिसका कभी नाश न होगा।

जो हृदय दूसरोंका प्रेम करनेके कारण बिल्कुल निःस्वार्थी हो गया है वह ऊंचा सुख पाने योग्य हो गया है। इतना ही नहीं जिसके पास ऐसा हृदय है वह अमर हो गया, क्योंकि ऐसी वृत्तिसे उसका दिव्य स्वभाव प्रकट होता है। तुम अबतक किये हुए कामों की बारीकीसे देख भाल करोगे तो तुम्हें ज्ञात पड़ेगा कि जिस प्रसंगपर तुम निःस्वार्थ पवित्र प्रेमका दया का एक शब्द भी बोले या वैसा काम किया वह प्रसंग तुम्हारी जिन्दगीमें उत्तमोत्तम सुखका था।

क्या स्त्री और क्या पुरुष उन्मत्तोंकी तरह इधर उधर सुखकी तलाशमें पैर रगड़ते फिरते हैं और उन्हें सुख नहीं मिलता। और उस समय तक उन्हें सुख मिल भी नहीं सकता जब तक उन्हें यह खात्री न हो जाय कि सुख तो उन्हींमें मौजूद है, उनके आसपास

चारों ओर मौजूद है, केवल स्वार्थके परदेको हटाने की देर है।

इस संबंधमें कवि वर्त्से ने परम सुखका कारण दिखलाते हुए खूब ही कहा है कि:—

(१)

सुखके लिये हुआ मैं बाहर
गया वृक्ष—वेलोंकेपास
वन उपवन गिरि खेत विहङ्गम
पूर सके कोई न मन आस।

(२)

मैं हारा, कंटाल गया, दी—
सुखकी आशा मैंने छोड़,
एक हिरनके समीप बैठा
लिया जगत्‌से मुखको मोड़।

(३)

इतनेमें कुछ मनुष्य आये
बोला पहला उनमें से
"भूखा हूं मैं" भोज्य दिया तब
जो कुछ वहां बना मुझसे।

(४)

दुसरा बोला "मुझको भाई
बड़ी जुरूरत पैसेकी"

दे पाकिटसे पैसे, उसकी—
 शान्ति हो सका वैसे की।

(५)

हमदर्दी पानेको तिसरा
 दुखका मारा मेरे पास
खूब तपाया, खूब सताया
 आया हो अत्यन्त उदास।

(६)

इसकी बातें सुन दिल पिघला
 आंखोंमें जल भर आया,
इसे प्रेमके पवित्र जलसे
 मैं कुछ शीतल कर पाया।

(७)

खोज शान्तिकी करता करता
 चौथा जन आया सुध भूल,
तन-मन-धनसे इसके सारे
 किये काम मैंने अनुकूल।

(८)

ज्यों ही शान्ति इन्होंने पाई
 त्योंही मेरे सन्मुख आ—
दिव्य—मनोहर रम्यरूप धर
 सुख—वांछित सुख खड़ा हुआ

(९)

बोला मेरे कानोंमें यों
" हुआ आजसे मैं तेरा
तूने अपने शुभ कामोंसे
बना लिया मुझको चेरा। "

(१०)

'गिरिधर, सुखका सिद्ध मंत्र पा
हो प्रसन्न बन गया महान;
वन—उपवन—तरु—लता–विहग सब
सुखदायक हो गया जहान।

अपने ही लिये सुख चाहनेके विचार और क्षणिक सुखके विचारोंको छोड़ो, तुम सर्व व्याप्त और चिरस्थायी सुख पानेको भाग्यशाली बनोगे। हलकी और स्वार्थ भरी 'अहंता,' के कारण तुम सब वस्तुओंको अपने लाभके लिये चाहते हो। इस स्वार्थको छोड़नेसे अभी हालमें तुम देवताओंके साथी बन जाओगे। इस जगतमें रहकर भी तुम्हें सर्वगत (universal) प्रेमका कुछ अनुभव होगा। दूसरोंके दुःख दूर करने और दूसरोंकी लगियोंको मिटानेमें तुम अपने स्वार्थको भूल जाओगे तो स्वर्गीय सुख मिलेगा और वह तुम्हें सब दुःख दर्द और रंजसे छुड़ा देगा।

शुभ विचार शुभ वचन और शुभ कार्यरूपी सीढ़ी पर चढ़कर मैं स्वर्गमें दाखिल हो गया यह एक महात्माका वचन याद आनेके कारण मैं आपसे कहता हूं कि आप भी इसी तरह स्वर्गमें दाखिल हो सकते हो स्वर्ग कुछ दूर नहीं है। वह पास ही है, परन्तु निःस्वार्थी मनुष्य ही उसे देख सकते हैं, जिनका हृदय पवित्र है वे ही उसका अनुभव कर सकते हैं।

निःसीम सुखका जो तुम्हें कभी अनुभव न हुआ हो तो तुम अपने हृदयके सामने निःस्वार्थी प्रेमकी उच्च भावना रक्खो और उसीके अनुकूल चलनेका प्रयत्न करो, तुम्हें उसके दर्शन होंगे। ऐसी आकांक्षा या प्रार्थना उच्च पदकी अभिलाषा है, वह, जीवकी अपने दिव्यस्थान (जहां शश्वत संतोष है) की ओर जाने की अभिलाषा है। उच्च अभिलाषा या भावनासे हलकी इच्छाओंका रूप पलट जाता है। वे इच्छाओं पलट कर रक्षा करनेवाली शक्ति बनती हैं। हलकी इच्छाओंके फंदेमें से निकलनेका उत्तम मार्ग उच्च अभिलाषा करना है। जैसे एक उड़ाऊ बालक दुःख और भ्रमणाका कडुवा फल चखकर चतुर होनेके बाद अपने पिताके घर लौट आता है, वैसे ही यह जीव भी संसारकी अनेक उपाधियोंमें भांति भांतिके दुःखका अनुभव कर अपनी ओर याने अंतर्मुख फिरता है।

इसकी स्वार्थ वृत्तिपर ज्यों ज्यों तुम जय पाते जाओगे, जगत्‌के पदार्थोंके साथ तुम्हें बांधने वाली सांकलोंको ज्यों ज्यों तुम तोड़ते जाओगे, त्यों त्यों तुम्हें अनुभव होता जायगा कि देनेमें क्या आनन्द है। किसी भी वस्तुके पानेके दुःखके बदलेमें तुम अपने वस्तु (ज्ञान, प्रेम और प्रकाश) देकर उससे होते हुए आनन्द को भोग सकोगे (उस समय तुम्हें अनुभव होगा कि लेने की अपेक्षा देनेमें विशेष आनन्द है।

परन्तु यह देनेका काम निस्वार्थ वृत्तिसे-फलकी आशा न रख करना चाहिये। पवित्र प्रेमके साथ दी हुई दक्षिणा याने दानसे निरन्तर आनन्द ही आनन्द मालूम होता है तुम सब कुछ दे डालो तो भी, तुम्हारा उपकार माननेमें न आवे, या किसी जगह तुम्हारा नाम न प्रसिद्ध किया जाय, या रायबहादुर—खान बहादुर वगैरा तुम्हें पद न मिले और उस समय जो तुम्हारा मन दूखे तो निश्चय समझना कि तुम्हारी दी हुई दक्षिणा याने दान सच्चे प्रेमका परिणाम न था बल्कि तुम्हारी मिथ्या मगरूरीका परिणाम था और तुम पानेके लिये ही देते थे सच कहें तो देते ही न थे बल्कि लेते थे। दूसरोंके हितके लिये अपने स्वार्थका बलिदान देना सीखो। तुम जो जो काम करो उसमेंसे अहंताके विचारको दूर करो। ये सब परम सुखके उ-

त्तम रहस्य हैं। स्वार्थके विचार तुम्हारे हृदयमें न घुस बैठे इसके बारेमें पूरा पूरा ध्यान रक्खो और अन्तःकरणसे हृदयसे आत्मत्यागका उत्तम पाठ सीखो। इससे तुम सुखके ऊंचेसे ऊंचे शिखर पर पहुंच सकोगे और निरभ्र (बादल रहित) आनन्दके प्रकाशमें खेलोगे और अमरताकी तेजस्विनी पोशाक पहनोगे।

प्रकरण ७ वां
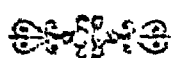
वैभवका अधिकारी कौन है ?
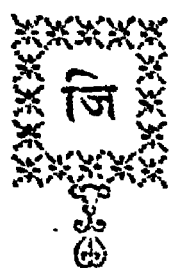
जिस हृदयमें प्रामाणिकपन विश्वास, औदार्य प्रेम हैं उस हृदयवाला मनुष्य ही सच्ची स- मृद्धि वैभव पाने योग्य अधिकारी है। जिस हृदय में ऐसे गुण नहीं हैं वह कभी सच्चे वैभवका अनुभव नहीं कर सकेगा, क्योंकि सच्चे सुखकी भांति सच्चे वैभवका आधार भी आन्तरिक गुणों पर है। लोभी मनुष्य करोड़पति हो जाय तो भी दुःखी ही देख पड़ेगा। जितना धन उसके पास है उससे अधिक धनवाला एक भी मनुष्य जब तक जहांन रहेगा तब तक वह अपनेको निर्धन ही गिनेगा।

परन्तु जो मनुष्य प्रामाणिक साफ दिल और प्रेमपूर्ण है वह अपनी बाह्य समृद्धि होने पर भी अन- न्त वैभवका अनुभव करता है। "जो असन्तुष्ट है, वही दुःखी है" अपने पास जो है उससे जो संताप मानता है वह सुखी और जो अपने पासकी वस्तुको उदारता पूर्वक व्यय कर सकता है वही सच्चा धनवान है।

इस जगतमें भौतिक और आध्यात्मिक अनेक शुभ वस्तुएं चारों ओर फैली हुई हैं इस बातपर, और साथ ही इस बातपर भी कि मनुष्य थोड़ेसे द्रव्य के लिये या थोड़ीसी जमीनके लिये कैसा घमसान युद्ध मचा डालते हैं, विचार करते हैं तो हमें कुछ कुछ ख्याल होता है कि बिचारे मनुष्य कैसे अज्ञान है। उसी समय अनुभव भी होता है कि स्वार्थ परायणता बड़ीसे बड़ी आत्मघात है। कुदरतको देखो, वह खुले हाथों से अपनी बक्षिसें चारों ओर लुटाती है तो भी उसे किसी बातकी कमी नहीं आती। अब मनुष्यको देखो तुम्हें दीख पड़ेगा कि वह सब चीजोंको पानेको दौड़ता फिरता है तो भी अन्तमें सब वस्तुओंको खो बैठता है। अवकाशके समय इसका मुकाबला करो। जो तुम्हें सच्ची समृद्धि पानेकी इच्छा हो तो पहले बहुतसे मनुष्योंने मान लिये हुए खोटे विचारको दूर कर दो कि परमार्थ करनेसे उलटा हमें दुःख होगा। स्पर्धा के तत्वपर श्रद्धा न रक्खो, क्योंकि उसपर श्रद्धा रखनेसे तुम्हारी यह श्रद्धा जाती रहेगी कि अन्तमें सत्यका ही जय होता है। इस स्पर्धाके बारेमें लोगों के विचार कैसे ही क्यों न हों परन्तु उसमें श्रद्धा तो नहीं ही है। प्रेम और सद्गुणके सनातन नियममें सम्पूर्ण विश्वास रक्खो, क्योंकि यह नियम स्पर्धाके सब

कायदोंको निकम्मे बना दूर निकाल देगा। और धर्ममय जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्योंके हृदयसे तो स्पर्धाके कायदे न मालूम कबसे रफूचक्कर हो ही चुके हैं। जिसको ऐसी श्रद्धा होती है वह अप्रामाणिक पन देखकर भी अपने मनकी शन्तिको भंग नहीं होने देता, क्योंकि उसे दृढ विश्वास होता है कि आखिर-कार अप्रमाणिकता का नाश अवश्य होवेही गा।

तुम चाहे जैसे संयोगोंमें क्यों न आपड़े हो तो भी तुम्हें उन संयोगोंमें जो बात धर्मपूर्ण और न्याय युक्त मालूम हो उसीके अनुकूल चलो, और नियममें श्रद्धा रक्खो। और भरोसा रक्खो कि जगत्में व्याप्त रही दैवीशक्ति हमें छोड़ न देगी, वह सदा हमारी रक्षा ही करेगी। ऐसे विश्वाससे सबके सब अलाभ लाभके रूपमें पलट जांयगे और सम्पूर्ण आपत्तियां आशिर्वाद का रूप ग्रहण करलेंगे। प्रामाणिकता, उदारता और प्रेमका कभी परित्याग न करो, क्योंकि सद्गुणोंके साथ उद्योग होगा तो सच्ची ऋद्धि के भोगने वाले बनोगे। "पहले मैं, पीछे सब,, मनुष्योंके बुरे विचारोंसे बंधी हुई इस मानताको कभी मान न दो, क्योंकि इस मा-नताको मान लेनेसे तुम कभी औरोंका भला न कर स-कोगे, बल्कि बड़े स्वार्थी (एकलपेटे) हो जाओगे।

ऐसे संकुचित विचार वाले मनुष्योंको उनके जीवनमें ऐसे मौके भी आ पहुंचते हैं कि उन्हें सब छोड़ देते हैं और वे दुःख अकेले पड़े पड़े हाय हाय किया करते हैं। उनकी आवाज कोई नहीं सुनता और न कोई मदद देता है। सबको भूलकर केवल अपने ही विचार करनेसे मनुष्यके उच्चसे उच्च और उत्तमसे उत्तम गुण खिलने नहीं पाते। जो तुम्हारा मन विशाल और हृदय औरोंके प्रेमसे पूर्ण होकर उनके अन्तःकरणसे मिलता होगा तो तुम्हें अपूर्व और महा आनन्द होगा और निःसन्देह अनन्त समृद्धि प्राप्त होगी।

जिन लोगोंने धर्म और प्रेमके नियमोंका परित्याग किया है उन्हें अपना बचाव करनेके लिये स्पर्धाके नियमोंकी ज़रूरत होती है। परन्तु जो लोग धार्मिक हैं—प्रेमी हैं उनके लिये इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, यह दलील फोकट नहीं है। इस समय भी जगत्में ऐसे मनुष्य मौजूद हैं जिन्होंने अपनी प्रामाणिकता और विश्वासके बलसे स्पर्धाके नियमोंका अनादर किया है। वे स्पर्धाका प्रसंग आने पर भी अपने सत्य नियमोंसे जरा भी नहीं हटते और धीरे धीरे ऋद्धि पानेको शक्तिमान हुए हैं, और जिन लोगों ने उन्हें हरानेका यत्न किया वे सब उनके काममें निष्फल हुए हैं।

जिन लोगोंमें ऐसे सद्गुण हैं उन्हें वे सद्गुण अमोघ बख्तर का काम देते हैं, जिनपर किसी भी अशुभ तत्व रूपी शस्त्रका कुछ भी असर नहीं होता। दुःखके प्रसंगमें भी वह सद्गुण दूनी रक्षा करते हैं। वे ऐसे पाये पर विजयकी इमारत चुनते हैं कि जो कभी डगेगा नहीं। और इससे ऐसी ऋद्धि मिलती है कि जो सदा समान भावसे स्थित रहती है,।
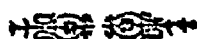
* प्रकरण ८ वां *

* ध्यान की शक्ति ÷

आत्मिक ध्यान यह दैवी मार्ग है। पृथ्वी परसे स्वर्गमें, अशुभमें से शुभमें, दुःखमेंसे सुखमें और अशान्तिमेंसे शान्तिकी ओर ले जाने वाली एक गुप्त निसरनी है। प्रत्येक महात्मा इसी निसरनी पर चढ़े हैं। जिसे हम इस समय 'पापी, 'अधम, व 'नीच, मानते हैं वह भी जल्दी या देर से इस निसरनी पर चढ़कर उन्नति पा सकता है। जगत्से कंटाले हुए यात्री जिन्हों ने जगत् को मिथ्या माना है और उसकी ओरसे नजर हटाकर अपने परम पिताकी ओर दृष्टि की है वे सब इसी मार्ग का आसरा लेते हैं। एकाग्रता या ध्यानके विना कभी पवित्र भावना, पवित्र शान्ति, अमर कीर्त्ति और शुद्ध आनन्द नहीं खिलेंगे। इस समय यह सब उच्च भावनाएं हमसे दूर जाती हैं, परन्तु ध्यानकी सहायतासे ये सब अपने वशमें आ जायगी। जेम्स एलन नामक अंग्रेजी तत्त्ववेत्ताने ध्यानकी व्याख्या नीचे लिखे मुआफिक की है:—

"Meditation is the intense dwelling, in thought, upon an idea or a theme, with the object of thoroughly comprehending it, and whatsoever you constdntly meditate upon, you will not only come to understand, but will grow more and more into its likeness, for it will be incorporated into your very being, become, in fact very self If therefore you constantly dwell upon that which is selfish and debasing, you will ultimately became selfish and debasing; if you ceaselessly think upon that which is pure and unselfish you will surely become pure and unselfish.

" किसी भी वस्तुका सम्पूर्ण ज्ञान पानेके लिये उस वस्तुके विचार में पूरे तोर पर मग्न हो जानेका नाम 'ध्यान, है ! जिस किसी वस्तु वा विषय पर बार बार विचार किया जाय या ध्यान लगाया जाय तो उस वस्तु वा विषय का ज्ञान ही नहीं होगा वल्कि तुम स्वयं तद्रूप होते जाओगे—तुम उसका रूप बन जाओगे। जो तुम निरन्तर स्वार्थके विचार करते रहोगे और नीचताका ध्यान करोगे तो आखिर तुम स्वार्थी और नीच बनोगे; और जो पवित्रता और निःस्वर्थपनका बार २ ध्यान करते रहोगे तो तुम सचमुच पवित्र और निस्वार्थी बनते जाओगे "।

शान्तिके समय जब तुम्हारी आत्मा अन्तर्मुख होती है उस समय तुम कैसे विचारोंमें ध्यान लगाकर मग्न रहते हो? यदि मुझे कह बताओगे तो मैं तुम्हें बताऊंगा कि तुम शान्तिकी ओर जाते हो या दुःखकी ओर, पवित्रताको बढ़ाते हो या पशु भावको।

जो मनुष्य एक वस्तु या एक विषय पर ही विचार कर सकता है उसका वर्ताव वैसा ही हो जाता है। इस लिये ध्येय पदार्थ अधम न रखकर उच्चसे उच्च रखना चाहिये, और साथके साथ ही स्वार्थका अंश न मिलने देकर अपने विचार भी उच्चसे उच्च कोटिके रखना चाहिये। ऐसा करनेसे अन्तःकरण निर्मल होगा और परमतत्त्वकी ओर खिंचेगा, इतना ही नहीं भ्रमकी खाईमें बारवार पड़ते बचेगा भी।

आत्मिक जीवन और ज्ञानकी परम उन्नति सम्बन्धी ध्यान करनेका यह चित्र है, प्रत्येक पैगम्बर, महात्मा, जीवन्मुक्त, जगदुद्धारक, इसी ध्यानकी शक्तिसे उच्च पद पागये हैं। बुद्धने परमतत्त्वके ऊपर इतना ध्यान लगाया कि उसके मुखमें से यह वाक्य निकल पड़ा कि "मैं परमतत्त्व हूं"। ईसु खिष्ट भी उस समय तक ध्यानमें लगा रहा कि जब तक उसने यह न कहा कि "मैं और मेरे पिता एक ही रूप हैं"। मुसलमान भक्त कवि मनसूरने अपने इश्कमें "अनलहक

की—" मैं ही खुदा हूं " की तान गाई। और वेदशास्त्र के ज्ञाताओंने 'अहं ब्रह्मास्मि' "तत्वमसि" आदि वाक्योंका पाठ किया।

श्री महावीरने ध्यानमग्न हो कर सिद्ध किया कि "अप्पा सो परमप्पा"।

पवित्र सत्य तत्वोंका ध्यान प्रार्थनाका जीवन है। यही ध्यान आत्माको परमात्माकी ओर लेजानेका मार्ग है। ध्यान विनाकी हुई प्रार्थना जीवरहित खोखेके समान है। ऐसी प्रार्थना मन और हृदयको निर्मल—पापरहित कर ऊंचे नहीं ले जा सकती। तुम प्रतिदिन ज्ञान, शांन्ति, शुद्धि और परम पदकी प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हो और वह चीज तुमसे फिर भी दूर रहती हो तो निश्चय समझो कि एक ओर तुम तुम्हारे हृदयमें प्रार्थना करते हो और दूसरी ओर अपने वर्तावको औरही मार्ग पर ले जाते हो। जो तुम ऐसे अनिश्चित पनको छोड़ दो, और अपने मनको स्वार्थी पनसे छुड़ा लो (जो तुम्हारी प्रार्थनामें विघ्न कर्ता है) जिस वस्तुके पाने योग्य तुम न हुए हो उसे न चाहो, और सत्य मार्गका ही विचार करते रहो, तो तुम उन्नतिक्रमसे बढ़ते ही जाओगे और अन्तमें परमात्माके साथ एकता कर सकोगे।

जो मनुष्य सांसारिक लाभ पाना चाहता है उसे भी हिम्मतके साथ उसीके पीछे लगा रहना होता है। जो वह मनुष्य दोनों हाथ जोड़ कर बैठा रहे और उसे पानेका कुछ भी प्रयास न करे तो सचमुच हम उसे मूर्ख ही कहेंगे। फिर प्रयत्न बिना स्वर्गीय सुख तुम्हें अपने आप आ मिलेगा इसका स्वप्नमें भी विचार न करना। सत्यमार्ग पर जब तुम दृढतासे चलना शुरू करोगे तभी तुम जीवनमें सत्य जाननेके अधिकारी बनोगे। और जब तुम यत्न करते २ आध्यात्मिक प्रसाद पाने योग्य हो जाओगे तब वह तुम्हें मिले बिना न रहेगा।

जो तुम वास्तवमें सत्यको ही ढूंढते हो, जो अपनी तृष्णा को नहीं संतुष्ट करना चाहते हो जो तुम दुनिया के सब सुखों से सब लाभों से सत्य को उत्तम मानते हो और उसे ही चाहते हो तो उसे पाने का भी तुम प्रयत्न प्रसन्नतापूर्वक करोगे ही।

जो तुम पाप और शोक से मुक्त होना चाहते हो जो निष्कलंक पवित्रता के लिये आंसू गिराते हो और जो प्रार्थना करते हो उस पवित्रताका स्वाद चखने की आकांक्षा हो जो तुम्हें ज्ञान और अनुभव पाना हो और जो शान्ति के स्थल पर जाना हो तो इसी

समय इसी समय ध्यान के मार्ग में दाखिल हो आओ और अपने ध्यान का विषय रक्खो 'सत्य';

मन मानी फोकट कल्पना और ध्यान, में क्या भेद है इस बातको समझने की आवश्यकता है। ध्यान कुछ स्वप्न का सा ख्याल नहीं है। या अव्यवहारिक बात नहीं है। यह तो सत्य खोजनेका उत्तमसे उत्तम मार्ग है। और जब तक पूर्ण सत्य न जान पड़े तब तक वह रुकता ही नहीं है। जो तुम इस तरह सत्य के उपासक बनोगे तो मतांधता में न खिचोगे परन्तु ममत्व भाव भूल कर केवल सत्य के ही शोधक बनोगे इस से तुम्हारे आसपास इकट्ठी हुई और तुम्हारी पहिले से ही पाली हुई सब की सब भूलें दूर हो जांयगी और इसी मार्ग पर चलते २ तुम पूर्ण सत्य का प्रकाश पा सकोगे। कवि ब्राउनिंगने लिखाहै कि:—

हम सब में एक मध्यबिन्दु है जहां पूर्ण सत्य प्रकाशित हो रहा है। उस के आस पास एक के बाद एक करके माया के परदे पड़े हुए हैं। इन के कारण सत्य का प्रकाश ठीक २ तौर पर बाहर नहीं पड़ सकता उसे इन्द्रियें और शरीर भली भांति नहीं प्रकाशित होने देते और इसी कारण सब भूलें होती हैं इन भूलों को दूर करने के लिये बाहर से प्रकाश नहीं लाना है परन्तु जो प्रकाश अपने अन्दर है उस प्रकाश

का आवरण दूर करने में ही सच्चा पुरुषार्थ समाया है। जो तुम इस पुरुषार्थ का आचरण करो तो जीवन का उद्देश सफल हो जायगा।

ध्यान के लिये दिन का ठीक समय मुकर्रर करना चाहिये और उसे अपने हेतु के लिये पवित्र गिनना चाहिये। जब प्रकृति में सर्वत्र शांति फैली हुई होती है ऐसा प्रातःकाल का समय सारे दिन में उत्तम समय है। प्रकृति की स्थिति भी उस समय विशेष सहायक होती है। तृष्णा और फीलिंग्स भी गई रात की गाढ निद्रा के बाद तावे हो सकती है। गये दिन की चल विचलता और थाक नष्ट हो जाने में मन शांत होता है और आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करने योग्य होता है। ऐसे समय में पहला प्रयत्न तुम्हारे करने का यही है कि अपनी सुस्ती और आलस्य को दूर कर देना। जो आलस्य की ओर दुर्लक्ष्य किया जायगा तो कभी आगे पैर न बढ़ाया जावगा। क्योंकि आत्मा की ख्वाहिशें आज्ञावाचक (Imperative) हैं।

आध्यात्मिक जागृति ही मानसिक और शारीरिक जागृति है। इस से सुस्त और विषय भोग में लिप्त मनुष्यों को सत् का भाग या ज्ञान होता ही नहीं है

तन्दुरुस्त आरोग्यवान् मनुष्य जो प्रातःकाल का इस शांत समय को गाढ़ निद्रा में या भोग विलास में खोते हैं वे स्वर्ग की निसरनी पर चढ़ने के सर्वथा नालायक हैं। जिस का स्वचैतन्य इस उच्चस्थान का अनुभव पाने के लिये जागृत हो गया है और जिस ने अज्ञानरूपी अंधकार का ध्वंस करने का प्रारम्भ किया है वह तो तारा मण्डल के दर्शन बंद होते ही जग जाते हैं और अपने अन्तरात्मा के साथ पवित्र और महती इच्छा से परम तत्त्व का प्रकाश देखनेको जुट जाते हैं जिस समय अजागृत दुनियां घोर निद्रा में खुर्राटे लेती रहती है।

महापुरुष जो ऊंचे स्थान पर चढ़े हैं और वहां स्थित हो रहे हैं वे कुछ एक ही फलांग मारकर नहीं चढ़ गये हैं परन्तु जब उनके साथी घोर निद्रामें पड़े थे उस समय वे उच्च स्थान पर पहुंचने को अपना रास्ता काटते रहे थे।

ऐसा एक भी महात्मा या एक भी पवित्र पुरुष सत्य का उपदेशक नहीं हुआ जो प्रातःकाल में उठे विना रहा हो। ईसु ख्रिस्त हमेशा प्रातःकाल में उठ कर एकान्त पर्वत पर अपना ऐक्य साधन करते थे बुद्ध सूर्योदय से एक घंटा पहिले उठकर ध्यानमें मग्न रहते थे और अपने सब शिष्यों को भी ऐसा ही क-

रने की आज्ञा देते थे। तीर्थंकरों को पर्वत पर ध्यान समाधि कायोत्सर्ग करने का कितना शौक था सब कोई जानते हैं।

प्रातःकाल के ऐसे उत्तम समय में जो कदाचित तुम्हें संसार व्यवहार के बंधनरूप कामों के बजानेकी फर्ज भी पड़े और ऐसे तुम्हारे ध्यान साधन में अन्तराय विघ्न आ पड़ता है तो रात का एक घंटा तुम्हें इस काम में लगाना चाहिए। और जो तुम अपने दिन भरके कामों की खटपट के कारण ऐसा भी न कर सकते हो तो तुम कामों में बीच में जो कुछ समय मिले उसी में अपने विचारों को पवित्रता और एकाग्रता की ओर ले जाना चाहिये। इस से जो थोड़ा सा समय तुम्हें मिलता है वह निकम्मा न जाकर उत्तम काम में लगेगा। इस तरह का वर्ताव करने से एक ओर काम करने की और दूसरी ओर एकाग्रता के लक्ष की दृढ़ता करने की ओर तुम्हारी स्वतन्त्र टेंव पड़ जायगी। क्रिश्टी महात्मा जेकब बोहीम जूते बनाने वाला था। वह जूतों को सीते समय पवित्र वस्तुओं पर लक्ष देते २ महात्मा का पद हासिल कर सका था। किसी भी तरह का जीवन क्यों न हो, विचार करने का अवकाश तो उस में है ही है। ज्यादा से ज्यादा काम और कड़ी से कड़ी मिहनत करनेवाले

भी उच्च भावना और एकाग्र साधन से दाखिल नहीं हो सकते।

आध्यात्मिक ध्यान और स्वानुभव ये दोनों अलग २ पदार्थ नहीं हैं। इस लिये हमें अपने स्वरूप का ध्यान करना चाहिए हमें अपने आप को जानने का यत्न करना चाहिये। और इस में भी हेतु रखना चाहिये सत् को जानने का और भूल चूक को दूर करने का। अपने अन्तर में हेतु विचार और कर्म संबन्धी सवाल करना चाहिये और उसे अपने मन की कल्पनाओं के साथ मिलाते जाना चाहिये। इस पर शांत और निष्पक्षता से चलना चाहिये। इस प्रकार के आचरण से तुम्हारी मानसिक और आध्यात्मिक तुलना में वृद्धि होगी। इस के न होने से मनुष्य संसार समुद्र में बिना मदद का हो पड़ता है। जो तुममें धिक्कार और आवेश की वृत्ति उदय हो आवे तो तुम मायालुपन और क्षमा के गुण पर एकाग्रता करो इस से तुम तुम्हारा मूर्ख और कठोर वर्ताव पर तीक्ष्ण दृष्टि से देखने को होशियार रहोगे। उससे प्रेम दया और क्षमाके समुद्रमें रहनेकी शुरुआत करोगे। ज्यों ज्यों तुम नीच वृत्तियोंको उच्च वृत्तियोंके आधीन करते जाओगे वैसे वैसे ही धीरे धीरे तुम्हारे हृदयरूपी गुफामें उस पवित्र प्रेमके नियमोंका—ज्ञानके अंकुरोंका प्रकाश गुप्त रीति

से पढ़ता जायगा और तुम्हें जीवन और चारित्रकी क- ठिनाइयोंके सब पहलुओंका ज्ञान साफ तौरपर होता जायगा। ऐसे ज्ञानका उपयोग यदि तुम अपने का- यिक वाचिक और मानसिक कर्मोंमें करोगे तो तुम्हारी दिनों दिन उन्नति ही होती जायगी और तुम ज्यादा से ज्यादा मायालु, ज्यादासे ज्यादा प्रेमी, ज्यादासे ज्यादा पवित्र होते जाओगे। प्रत्येक भूल, प्रत्येक तृष्णा, प्रत्येक मानसिक निर्बलता इस तरह ध्यानकी शक्तिसे वशकी जा सकती है। ज्यों ज्यों ये भूल, ये पाप दूर हो जाते हैं त्यों त्यों इस यात्री जीवात्मा पर सत्का प्रकाश स्वच्छ और साफ प्रकाशित होता है।

इस तरह ध्यानकी सहायतासे तुम तुम्हारे आस पास स्वार्थीपन रूपी शत्रुके सामने बचावरूपी कोट बांधते जाओगे और सत्की अविनाशी पवित्रता में निवास करते रहोगे। ध्यानके परिणामका सीधा यह फल मिलेगा शान्त और आध्यात्मिक बलकी वृद्धि होगी और जीवन संग्राममें तुम्हें खड़े रहनेको और ठहरनेको स्थान मिलेगा। पवित्र विचारोंकी बड़ीभारी शक्ति है। शान्त ध्यानके समयमें जो और बल संपा- दन किये जाते हैं उनसे जीवात्मा लड़ाई, खटपट, दुःख और आवेशके प्रसंगमेंसे अपने आपको बचा लेनेको समर्थ होता है। जैसे जैसे ध्यानकी शक्तिसे तुम्हारे

ज्ञानकी वृद्धि होती जायगी वैसे ही वैसे तुम अपनी स्वार्थ भरी तृष्णाओंको (जो दुःख और शोक उत्पन्न करती हैं) छोड़ते जाओगे। इससे तुम दृढ़ और नित्य तत्वों पर स्थिर होकर खड़े रहोगे और स्वर्गकी शान्ति का अनुभव करोगे।

ध्यानके बलसे अनन्त तत्वका ज्ञान होता है। ध्यानकी शक्तिसे तत्वपर आस्था रखनेसे और उस पर निर्भय होकर स्थित होनेसे कौशल्य बढ़ता है और अनन्तके साथ एकरूपता होती है।

तुम इस समय जिस नीतिमय भूमिपर हो उससे आगे तुम्हारे ध्यानको बढ़ाओ। याद रक्खो कि तुम्हें तो जैसे बने जल्दी सत्का भान को बढ़ाना है। जो तुम धर्मके पक्के जैन हो तो तुम्हें श्री महावीरके पवित्र और निष्कलंक चरित्र पर एकाग्रता करना चाहिये और उसके प्रत्येक वर्त्तनको हृदयमें तोल उसके अनुकूल अपना चारित्र बनाना चाहिये कि जिससे तुम उसकी शुद्धताके ज्यादासे ज्यादा पास आते जाओगे। कितनेक मतवाले सत्की ओर लक्ष नहीं देते, अपनी संप्रदायके नियमोंसे ही चिमटे रहते हैं, बाह्य प्रार्थना पर ही संतोष मानते हैं और अपनी मर्यादामें ही चलते हैं इससे दुःख और पाप रूपी समुद्रमें बार बार गोते खाते हैं। तुम्हें ऐसा न करना चाहिये। ऐसे

पक्षपाती मत या पंथसे—सत्यजीवन रहित क्रियाओंसे आगे बढ़नेमें ध्यानकी शक्ति तुम्हारे बहुत काम आयगी। इस तरह ज्ञानके उच्च मार्गमें तत्पर दृढ़ता पूर्वक चलते हुए सत्का भास होनेमें कुछ बाधा न होगी।

आतुरता और दृढ़ आग्रहपूर्वक नित्य ध्यानका अभ्यास करनेसे सत्का भान होता है। सत्के ढूंढने वाले पंथी ही सत्के शास्त्रोंको जान सकते हैं।

गौतम बुद्धने अपने शिष्य मंडलको नीचे लिखे हुए पांच * महान् प्रकारोंका ध्यान करनेका उपदेश दिया था—

(१) प्रेम भावनाः—जिसमें अन्तःकरण पूर्वक प्राणीमात्रका भला चाहनेकी इच्छा करना, यही नहीं परन्तु शत्रुके लिये भी सुखकी भावना करनेका समावेश होता है।

(२) दयाः—जिसमें प्राणी मात्रके दुःखोंका विचार कर अपने संकल्पमें उनके शोक व आशाओंका

---

* जैन धर्ममें कही हुई अनित्यभावना, आदि बारह भावनाओंमेंसे कोई एक या ज्यादा भावनाओं को भानेसे या हर कोई महा पुरुषके जीवन चरित्र पर ध्यान धरनेसे भी ऐसा ही परिणाम आ सकता है।

चित्र खींचकर उनकी ओर करुणा करनेका समावेश होता है।

(३) आनन्दः—जिसमें पराये सुखमें अपने सुखके अनुभव करनेका समावेश होता है।

(४) अच्छता:—जिसमें अनाचार व अनीतिका दुःखदायक परिणामोंका विचार और उससे उत्पन्न होते हुए पाप और दुःखकी असर, तथा पापसे मिलते सुखकी क्षण भंगुरता और नाशकारकता आदिका समावेश होता है।

(५) शान्ति—जिसमें स्वार्थ भय प्रेम, धिक्कार, घातकीपन, जुलम, आदि सबके परले पार जानेके विचारका याने निष्पक्षपात और शुद्धतासे अपनेको शान्त रखनेका समावेश है।

इस प्रकारके ध्यानमें मग्न रहनेसे बुद्धके शिष्य मंडलको सत्के ज्ञानका भान हुआ था। जब तक तुम्हारा हेतु सत् है, जब तक तुम्हारी आशा—तृष्णा पवित्र अन्तःकरण और शुद्ध जीवनवाली है तब तक तुम ऐसा ध्यान करो या न करो कोई बात नहीं वह एक ही बात है। तुम्हारे ध्यानको, तुम्हारे अन्तःकरणको प्रेमरूपी झरेसे विकसित होने दो और धिक्कारकी वृत्तिसे तथा तुच्छतासे अपने मनको छुड़ा लो। दुनियामें जैसे

पुष्प प्रातःकालमें खिलनेके लिये किरण ग्रहण करने को पंखडियां उघाडते हैं वैसे ही तुम्हारे जीवात्माको खोलकर उसमें सत्के तेजस्वी प्रकाशित किरणोंको खूब आने दो ।

उच्च भावना रूपी पांखोंसे आनन्द स्वर्गमें उड़ो, निडर हो, बड़ी बड़ी शक्तियां मिल सकती हैं ऐसा मानो बिलकुल शांत और निष्कलंक जीवन व्यतीत हो सकता है इसमें संदेह न करो, और ऊंचासे ऊंचा सत्य मिल सकता है इस पर श्रद्धा रक्खो ऐसी श्रद्धा रखने वाले मनुष्य बड़े वेगसे स्वर्गकी ओर जाते हैं और जिनमें ऐसी श्रद्धा नहीं होती वे वहममें ही भ्रमण करते हैं और दुःख पाया ही करते हैं ।

इस तरह श्रद्धा रखनेसे—इस तरह उच्च भावना भानेसे इस तरह ध्यानमें मग्न होनेसे तुम्हें अत्यंत मधुर आत्मा अनुभव प्राप्त होगा और तुम्हें ऐसे २ गुप्त दर्शन होंगे कि तुम हर्षोन्मत्त जैसे बन जाओगे । जैसे जैसे तुम सर्वोत्कृष्ट भलाई का अनुभव करते जाओगे वैसे ही वैसे तुम्हें ऊंचा आनन्द होता जायगा, तुम्हारे हृदयमें अनन्त शांति विराजमान होगी जूनी पुरानी चीजें बहुत समयकी बलायें दूर होंगी और तुम सर्वथा नये ही बन जाओगे । स्थूल विश्वके परदेको

मूर्ख मनुष्यकी आंख नहीं भेद सकती परन्तु सत्यकी आंखसे तो वह बिलकुल पारदर्शक हो जाता है। ऐसा होनेपर वह तुम्हारी आंखोंके साम्हनेसे दूर हट जायगा और तुम्हें आत्मिक विश्वके दर्शन होंगे। ऐसी हालतमें समयका पता भी न रहेगा और तुम आदि अंतहीन स्थितिका अनुभव करोगे। स्थितियोंका फेर फार और मृत्यु तुम्हें चिन्ता न पहुंचा सकेगी, क्योंकि उस समयकी स्थिति अचल, अमर, अव्याबाध होती है।